पर जो फल आता है उसे क्षेत्रफल कहते हैं। जैसे चार हाथ लम्बे और पांच हाथ चौड़े क्षेत्रका क्षेत्रफल २० हाथ हुआ।

१५. प्र०—घन क्षेत्रफल किसे कहते हैं ?

उ०—जहां लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई तीनोंकी विवक्षा हो उसे घन क्षेत्र कहते हैं। और उसके क्षेत्रफलको खात फल या घन क्षेत्रफल कहते हैं। जैसे चार हाथ लम्बे, चार हाथ चौड़े और पांच हाथ ऊँचे क्षेत्रका खातफल ४ × ४ × ५ = ८० हाथ हुआ।

१६. प्र०—व्यास या परिधि किसे कहते हैं ?

उ०—गोलाकार क्षेत्रके बीचमें जितना विस्तार होता है उसे व्यास कहते हैं और गोलाकार क्षेत्रकी गोलाईके प्रमाणको परिधि कहते हैं।

१७. प्र०—परिधि और क्षेत्रफलका क्या नियम है ?

उ०—मोटे तौर पर व्यास से तिगुनी परिधि होती है। और परिधिको व्यासकी चौथाईसे गुणा करने पर क्षेत्रफल होता है। तथा क्षेत्रफलको ऊँचाई या गहराईसे गुणा करने पर खातफल होता है।

१८. प्र०—मानके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—लौकिक मान और लोकोत्तर मान।

१९. प्र०—लौकिक मान किसे कहते हैं ?

उ०—लोकमें प्रचलित मानको लौकिक मान कहते हैं। उसके छै भेद हैं—मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान। अन्न वगैरह मापनेके बरतनोंको मान कहते हैं। तराजूको उन्मान कहते हैं। चुल्लू वगैरहको अवमान कहते हैं जैसे एक चुल्लू जल। एक आदिको गणिमान कहते हैं जैसे एक दो तीन। गुंजा आदिको प्रतिमान कहते हैं जैसे रत्ती मासा वगैरह। घोड़ेकी लम्बाई वगैरह देखकर उसका मूल्यआंकना तत्प्रतिमान है।

२०. प्र०—लोकोत्तर मानके कितने भेद हैं ?

उ०—चार भेद हैं—द्रव्यमान, क्षेत्रमान, कालमान और भावमान। एक परमाणु जघन्य द्रव्यमान है और सब द्रव्योंका समूह उत्कृष्ट द्रव्यमान है। एक प्रदेश जघन्य क्षेत्रमान है और समस्त आकाश उत्कृष्ट क्षेत्रमान है। एक समय जघन्य कालमान है और सर्वकाल उत्कृष्ट कालमान है। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्य-

१७—त्रि० सा० गा० १७।

१८-१९—त्रि० सा० गा० ९। २०-२१—त्रि० सा० गा० ११-१२। २२—संख्यामान के भेदोंका विस्तृत स्वरूप जानने के लिये त्रिलोकसार गाथा १५–५१ देखो।

पर जो फल आता है उसे क्षेत्रफल कहते हैं। जैसे चार हाथ लम्बे और पांच हाथ चौड़े क्षेत्रका क्षेत्रफल २० हाथ हुआ।

१५. प्र०—घन क्षेत्रफल किसे कहते हैं ?

उ०—जहाँ लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई तीनोंकी विवक्षा हो उसे घन क्षेत्र कहते हैं। और उसके क्षेत्रफलको खात फल या घन क्षेत्रफल कहते हैं। जैसे चार हाथ लम्बे, चार हाथ चौड़े और पांच हाथ ऊँचे क्षेत्रका खातफल ४×४×५=८० हाथ हुआ।

१६. प्र०—व्यास या परिधि किसे कहते हैं ?

उ०—गोलाकार क्षेत्रके बीचमें जितना विस्तार होता है उसे व्यास कहते हैं और गोलाकार क्षेत्रकी गोलाईके प्रमाणको परिधि कहते हैं।

१७. प्र०—परिधि और क्षेत्रफलका क्या नियम है ?

उ०—मोटे तौर पर व्यास से तिगुनी परिधि होती है। और परिधिको व्यासकी चौथाईसे गुणा करने पर क्षेत्रफल होता है। तथा क्षेत्रफलको ऊँचाई या गहराईसे गुणा करने पर खातफल होता है।

१८. प्र०—मानके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—लौकिक मान और लोकोत्तर मान।

१९. प्र०—लौकिक मान किसे कहते हैं ?

उ०—लोकमें प्रचलित मानको लौकिक मान कहते हैं। उसके छै भेद हैं—मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान। अन्न वगैरह मापनेके बरतनोंको मान कहते हैं। तराजूको उन्मान कहते हैं। चुल्लू वगैरहको अवमान कहते हैं जैसे एक चुल्लू जल। एक आदिको गणिमान कहते हैं जैसे एक दो तीन। गुंजा आदिको प्रतिमान कहते हैं जैसे रत्ती माशा वगैरह। घोड़ेकी लम्बाई वगैरह देखकर उसका मूल्यआंकना तत्प्रतिमान है।

२०. प्र०—लोकोत्तर मानके कितने भेद हैं ?

उ०—चार भेद हैं—द्रव्यमान, क्षेत्रमान, कालमान और भावमान। एक परमाणु जघन्य द्रव्यमान है और सब द्रव्योंका समूह उत्कृष्ट द्रव्यमान है। एक प्रदेश जघन्य क्षेत्रमान है और समस्त आकाश उत्कृष्ट क्षेत्रमान है। एक समय जघन्य कालमान है और सर्वकाल उत्कृष्ट कालमान है। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध-

१७—त्रि० सा० गा० १७।

१८-१९—त्रि० सा० गा० ९। २०-२१—त्रि० सा० गा० ११-१२। २२—संख्यामान के भेदोंका विस्तृत स्वरूप जाननेके लिये त्रिलोकसार गाथा १५-५१ देखो।

च्छेद होते हैं। जैसे सोलहके अर्द्धच्छेद चार होते हैं क्योंकि सोलह राशि चार बार आधी-आधी हो सकती है—८, ४, २, १।

४१. प्र०—प्रतरांगुल किसे कहते हैं?

उ०—सूच्यंगुलके वर्गको प्रतरांगुल कहते हैं।

४२. प्र०—घनांगुल किसे कहते हैं?

उ०—सूच्यंगुलके घनको घनागुल कहते हैं। सो एक अंगुल लम्बा, एक अंगुल चौड़ा, और एक अंगुल ऊँचा प्रदेशोंका परिमाण जानना।

४३. प्र०—जगच्छ्रेणी किसे कहते हैं?

उ०—पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण घनांगुलको रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसे जगच्छ्रेणी कहते हैं। सो सात राजु लम्बी आकाशके प्रदेशोंकी पंक्ति प्रमाण जाननी चाहिये।

४४. प्र०—जगत्प्रतर या प्रतरलोक किसे कहते हैं?

उ०—जगच्छ्रेणीके वर्गको अर्थात् जगत्श्रेणीको जगत्श्रेणीसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसे जगत्प्रतर या प्रतरलोक कहते हैं। सो जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे और चौड़े क्षेत्रमें जितने प्रदेश आयें उतना जानना चाहिये।

४५. प्र०—घनलोक किसे कहते हैं?

उ०—जगत्श्रेणीके घनको लोक अथवा घनलोक कहते हैं। सो जगत्श्रेणी प्रमाण लम्बे चौड़े और ऊँचे क्षेत्रमें जितने प्रदेश आयें उतना जानना चाहिये।

४६ प्र०—राजु किसे कहते हैं?

उ०—जगत्श्रेणीके सातवें भागको राजू कहते हैं।

●

२

४७. प्र०—लोक किसे कहते हैं?

उ०—जितने आकाशमें धर्म अधर्म आदि छै द्रव्य पाये जाते हैं तथा जीव और पुद्गलोंका गमनागमन होता है उतने आकाशको लोक अथवा लोकाकाश कहते हैं।

४८. प्र०—लोक कहाँपर स्थित है?

उ०—जहाँ असि, मषि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन छै कर्मोंकी प्रवृत्ति हो उसे कर्मभूमि कहते हैं।

६१. प्र०—कर्मभूमियाँ कितनी हैं?

उ०—पाँच मेरु सम्बन्धी पाँच भरत, पाँच ऐरावत और देवकुरु उत्तरकुरुको छोड़कर पाँच विदेह इस प्रकार सब मिलकर १५ कर्मभूमियाँ हैं।

६२. प्र०—भोगभूमि किसे कहते हैं?

जहाँ दस प्रकारके कल्पवृक्षोंसे प्राप्त भोगोंको ही भोगा जाता है और छै कर्मोंकी प्रवृत्ति नहीं है उसे भोगभूमि कहते हैं।

६३. प्र०—भोगभूमियाँ कितनी हैं?

उ०—सब भोगभूमियाँ तीस हैं। जिनमेंसे पाँच मेरु सम्बन्धित, पाँच हैमवत और पाँच हैरण्यवत इन दस क्षेत्रोंमें जघन्य भोगभूमि है। पाँच हरि और पाँच रम्यक इन दस क्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि है। और पाँच देवकुरु और पाँच उत्तरकुरु इन दस क्षेत्रोंमें उत्तम भोगभूमि है।

६४. प्र०—क्या भरतादि क्षेत्रोंमें सदा एक सी ही अवस्था रहती है?

उ०—भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालके छै समयोंके द्वारा परिवर्तन हुआ करता है। शेष क्षेत्रोंमें सदा एक-सा ही काल वरतता है।

६५. प्र०—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल किसे कहते हैं?

उ०—जिस कालमें मनुष्य और तिर्यंचोंकी आयु शरीरकी ऊँचाई और विभूति आदि घटते रहते हैं उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं और जिस कालमें ये बढ़ते रहते हैं उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं।

६६. प्र०—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालके छै भेद कौन से हैं?

उ०—सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमा दुषमा, दुषमा सुषमा, दुषमा और अति-दुषमा ये छै अवसर्पिणी कालके भेद हैं और अतिदुषमासे सुषमासुषमा पर्यन्त छै भेद उत्सर्पिणी कालके हैं।

६७. प्र०—भरत क्षेत्रमें परिवर्तनका क्रम कैसा है?

उ०—सुषमासुषमा कालके आदिमें भरत क्षेत्रमें उत्तम भोग-भूमि रहती है। सुषमासुषमा कालका प्रमाण चार कोड़ाकोड़ी सागर है। फिर क्रमसे हानि होते होते सुषमा कालका आरम्भ होता है। उसमें मध्यम भोगभूमि रहती है उसका प्रमाण तीन कोड़ाकोड़ी सागर है। फिर क्रमसे हानि होते होते सुषमा-

भूमिका आरम्भ होने लगता है। उस कालमे प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भी उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ जीव मोक्ष भी चले जाते हैं। चक्रवर्तीका मान भंग होता है, वह एक नये वर्ण ब्राह्मणकी रचना करता है। चौथे दुषमासुषमा कालमे ६३ मेंसे ५८ शलाका पुरुष ही जन्म लेते हैं। नौवेंसे सोलहवें तीर्थङ्कर तक सात तीर्थङ्करोंके तीर्थमें धर्मका विच्छेद हो जाता है। सातवें, तेईसवें और अन्तिम तीर्थङ्करपर उपसर्ग होता है। ग्यारह रुद्र और नौ नारद होते हैं। पाँचवें दुषमा कालमें चाण्डाल आदि जातियाँ तथा कल्की उपकल्की होते हैं। ये अनेक नई बातें हुण्डावसर्पिणी कालमे होती हैं।

६९. प्र०—त्रेसठ शलाका पुरुष किन्हें कहते हैं ?

उ०—चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण ये त्रेसठ शलाका पुरुष अर्थात् गणनीय महापुरुष कहे जाते हैं।

७०. प्र०—चौबीस तीर्थङ्करोंके नाम क्या हैं ?

उ०—ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्द्धमान ये भरत क्षेत्रमे उत्पन्न हुए चौबीस तीर्थङ्करोंके नाम हैं।

७१. प्र०—चौबीस तीर्थङ्करोंका जन्म स्थान कहाँ है ?

उ०—ऋषभनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दन नाथ, सुमतिनाथ, और अनन्त नाथका जन्मस्थान अयोध्या है। संभवनाथका जन्मस्थान श्रावस्ती नगरी है, पद्मप्रभका जन्मस्थान कौशाम्बी है, सुपार्श्व और पार्श्वनाथका जन्मस्थान वाराणसी (बनारस) है, चन्द्रप्रभका जन्मस्थान चन्द्रपुरी और श्रेयांसनाथका जन्मस्थान सिंहपुरी (बनारसके पास सारनाथ) है। पुष्पदन्तका जन्म स्थान काकन्दी, शीतलनाथका भद्दलपुर (भेलसा), वासुपूज्यका चम्पानगरी, विमल नाथका कंपिला, धर्मनाथका रत्नपुरी (अयोध्याके पास), शान्ति, कुन्थु और और अरनाथका हस्तिनापुर, मल्लिनाथ और नमिनाथका मिथिलापुरी, नेमिनाथका शौरीपुर (बटेश्वरके पास), मुनिसुव्रतनाथका राजगृह और वर्धमानका जन्मस्थान कुण्डलपुर है।

७२. प्र०—चौबीस तीर्थङ्करोंके निर्वाणस्थान कौनसे हैं ?

उ०—भगवान् ऋषभदेवका निर्वाणस्थान कैलाश पर्वत है, वासुपूज्यका चम्पापुर, नेमिनाथका गिरनार पर्वत और महावीर वर्द्धमानका निर्वाणस्थान पावापुरी है। और शेष तीर्थङ्करोंकी निर्वाण-भूमि सम्मेद शिखर पर्वत है।

१२७. प्र०—विसंयोजन किसे कहते हैं ?

उ०—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभके कर्मपरमाणुओंको अन्य कषाय और नो कषायरूप परिणमानेको विसंयोजन कहते हैं।

१२८. प्र०—अधःकरण किसको कहते हैं ?

उ०—जिस करणमें ऊपरके समयोंमें स्थित जीवोंके परिणाम जैसी विशुद्धताको लिये हुए हों, वैसी ही विशुद्धताको लिये हुए परिणाम नीचेके समयमें वर्तमान जीवके भी होते हैं उसे अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। जैसे, दो जीवोंने एक साथ अधःप्रवृत्तकरणको प्रारम्भ किया। द्वितीय आदि समय होनेपर उनमेंसे एक जीवके परिणाम जैसी विशुद्धताको लिये हुए होते हैं, दूसरे जीवके वैसी विशुद्धताको लिये हुए परिणाम प्रथम समयमें भी होते हैं। इस प्रकार इस करणमें ऊपर और नीचेके समय समयवर्ती परिणामोंमें समानता और असमानता होनेसे इसे अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है।

१२९. प्र०—अपूर्वकरण किसको कहते हैं ?

उ०—जिसमें प्रति समय अपूर्व अपूर्व परिणाम हों उसे अपूर्वकरण गुणस्थान कहते हैं। सारांश यह है कि इस करणमें ऊपरके समयोंमें स्थित जीवोंके और नीचेके समयोंमें स्थित जीवोंके परिणाम कभी भी समान नहीं होते। किन्तु एक ही समयमें स्थित जीवोंके परिणाम समान भी होते हैं और समान नहीं भी होते। जैसे, जिन जीवोंको अपूर्वकरणमें आये पाँचवां समय है, उन जीवोंके जैसे परिणाम होते हैं वैसे परिणाम जिन जीवोंको अपूर्वकरणमें आये एक दो तीन या चार अथवा छै समय हुए हैं, उनके कभी भी नहीं होते। तथा पाँचवें समयमें वर्तमान जीवोंके परिणाम परस्परमें समान भी होते हैं और नहीं भी होते। इसका काल भी अन्तर्मुहूर्त है।

१३०. प्र०—अधःकरण और अपूर्वकरणमें क्या अन्तर है ?

उ०— अधःकरणमें भिन्न-भिन्न समयोंमें वर्तमान जीवोंके परिणामोंमें जैसे समानता होती है अपूर्वकरणमें वह नहीं होती। तथा अध.करणमें जैसे एक समयमें स्थित जीवोंके परिणामोंमें समानता और असमानता दोनों होती हैं वैसे अपूर्वकरणमें भी होती है।

१३१ प्र०—अनिवृत्तिकरण किसको कहते हैं ?

उ० - जिस करणमें भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणाम असमान ही होते हैं और एक समयवर्ती जीवोंके परिणाम समान ही होते है, उसको अनिवृत्तिकरण कहते हैं। जैसे, जिन जीवोंको अनिवृत्तिकरणमें आये हुए पाँचवां समय है उन त्रिकालवर्ती जीवोंके परिणाम परस्परमें समान ही होते है, हीन अधिक नहीं होते। तथा वे परिणाम, जिन जीवोंको अनिवृत्तिकरणमें आये हुए चौथा समय हुआ है, उनके विशुद्ध परिणामोंसे अनन्तगुणे विशुद्ध होते हैं। इसी तरह जिन जीवोंको अनिवृत्तिकरणमें आये हुए छठा समय हुआ है, उनके परिणाम पांचवे समयवर्ती जीवोंके विशुद्ध परिणामोंसे अनन्तगुणे विशुद्ध होते हैं। इसी तरह सर्वत्र जानना।

१३२ प्र०—सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—जिस गुणस्थानमें अत्यन्त सूक्ष्म अवस्थाको प्राप्त लोभ कषाय मात्रका उदय शेष रहता है उसको सूक्ष्म साम्पराय नामका दसवां गुणस्थान कहते हैं।

१३३. प्र०—उपशान्त कषाय गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—जैसे गदले पानीमें फिटकरी डालनेसे पानी ऊपरसे निर्मल हो जाता है और गाद उसके नीचे बैठ जाती है वैसे ही जिस जीवका मोहनीय कर्म पूरी तरहसे उपशान्त हो जाता है, वह जीव उपशान्त कषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थानवाला कहा जाता है। इस गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है। काल पूरा हो जानेपर मोहनीयका उदय हो आता है जिससे इस गुणस्थानवाला जीव गिरकर नीचेके गुणस्थानोंमें आ जाता है।

१३४ प्र०—क्षीण कषाय गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृतियोंका क्षय हो जानेसे जिसका चित्त स्फटिकके पात्रमें रखे हुए जलके समान निर्मल होता है उसको क्षीण कषाय गुणस्थानवाला कहते हैं।

१३५. प्र०—उपशान्त कषाय और क्षीण कषायमें क्या अन्तर है ?

उ०—उपशान्त कषाय जीवके यद्यपि मोहका उदय नहीं है फिर भी मोहनीय कर्मकी सत्ता है किन्तु क्षीण कषाय जीवके मोहनीय कर्मका उदय भी नहीं है और अस्तित्व भी नहीं है। फिर भी दोनोंके ही परिणामोंमें कषायोंका अभाव है अतः दोनोंके यथाख्यात चारित्र होता है और दोनों ही बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहसे रहित होनेके कारण निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं।

१३६. प्र०—सयोग केवली गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

१३७. प्र०—अयोगकेवली गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—समस्त कर्मोंका [illegible] अभाव है, तथा मनोयोग, वचनयोग और काययोगसे रहित [illegible] अयोग कहे जाते हैं उनको अयोगकेवली कहते हैं।

१३८. प्र०—किस गुणस्थानसे जीव किस गुणस्थानमें जा सकता है ?

उ०—मिथ्यादृष्टि तीसरे, चौथे, पाँचवें और सातवें गुणस्थानको प्राप्त कर सकता है। दूसरे सासादनगुणस्थानवाला जीव नियमसे मिथ्यात्वमें ही आता है, ऊपर नहीं चढ़ सकता। मिश्र गुणस्थानवाला पहले या चौथे गुणस्थानको प्राप्त होता है। अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरत, अप्रमत्त संयत गुणस्थान तक प्रमत्त संयतके सिवाय अन्य किसी भी गुणस्थानको प्राप्त हो सकते हैं। प्रमत्त संयत गुणस्थानवाला अप्रमत्त संयत पर्यन्त के गुणस्थानोंमेंसे किसी भी गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है। अप्रमत्त संयत गुणस्थानवाला छठे गुणस्थानको या अपूर्वकरण गुणस्थानको प्राप्त होता है। उपशम श्रेणिवाले जीव उपशम श्रेणिके गुणस्थानोंपर क्रमसे ही चढ़ते हैं और क्रमसे ही उतरते हैं। अतः अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानवाले एक अपनेसे नीचेके और एक अपनेसे ऊपरके, इस तरह दो ही गुणस्थानोंको प्राप्त कर सकते हैं। और उपशान्त कषाय गुण-स्थानवाला ऊपर नहीं चढ़ता, नीचे ही आता है अतः वह एक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानको ही प्राप्त होता है। क्षपक श्रेणिवाले जीव आठवें, नौवें, दसवें और बारहवें आदि गुणस्थानमें क्रमसे चढ़ते हैं।

१३९. प्र०—किस गुणस्थानमें मरण होता है ?

उ०—तीसरे गुणस्थानमें तथा क्षपक श्रेणिके चार गुणस्थानोंमें और तेरहवें गुणस्थानमें मरण नहीं होता। शेष गुणस्थानोंमें होता है।

---

१३८. कर्मकाण्ड, गा० ५५७–५५९।

१४०. प्र०—किस गुणस्थानमे मरकर जीव किस गतिमे जाता है ?

उ०—पहले और चौथे गुणस्थानमे मरकर जीव चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमे जा सकता है। सासादनमे मरकर नरक गतिमे नही जाता शेष तीनोंमेसे किसी भी गतिमे जा सकता है। चौदहवे गुणस्थानमे मुक्ति होती है। और शेष सात गुणस्थानोंसे मरकर जीव नियमसे देवगतिमे जन्म लेता है।

१४१ प्र०—किन अवस्थाओमे मरण नहीं होता ?

उ०—मिश्र काययोगवाले, प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाले और सातवे नरकमे दूसरे आदि गुणस्थानोंमे वर्तमान जीवोंका मरण नही होता। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके जो जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमे आ जाता है उसका अन्तर्मुहूर्त तक उसका मरण नही हो सकता। दर्शन मोहका क्षय करनेवाला जब तक कृतकृत्य नही हो जाता तब तक उसका मरण नही होता।

१४२. प्र०—जीव समास किसे कहते हैं ?

उ०—जिनके द्वारा अथवा जिनमे सब ससारी जीवोंका सग्रह किया जाता है उन्हें जीवसमास कहते है।

१४३. प्र०—संक्षेपसे जीवसमासके कितने भेद है ?

उ०—चौदह भेद हैं—एकेन्द्रियके दो भेद—बादर और सूक्ष्म, विकलेन्द्रियके तीन भेद—दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय तथा पचेन्द्रियके दो भेद—सैनी और असैनी। ये सातों पर्याप्तक और अपर्याप्तकके भेदसे दो-दो प्रकारके होते है।

१४४. प्र०—विस्तारसे जीवसमासके कितने भेद है ?

उ०—अट्ठानवे-एकेन्द्रियके बयालीस, विकलेन्द्रियके नौ, पचेन्द्रियके सैंतालीस।

१४५. प्र०—एकेन्द्रियके बयालीस भेद कौनसे हैं ?

उ०—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और साधारण वनस्पतिकायिकके दो भेद नित्यनिगोद और इतरनिगोद ये छहों बादर भी होते है और सूक्ष्म भी होते हैं अत बारह भेद हुए। तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिकके दो भेद हैं—सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित। ये चौदहों पर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तकके भेदसे तीन-तीन प्रकारके होते है। इस तरह एकेन्द्रियके ४२ जीवसमास होते हैं ?

१४६. प्र०—विकलेन्द्रियके नौ भेद कौनसे हैं ?

उ०—दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियके पर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तकको अपेक्षासे नौ जीवसमास होते हैं ?

१५२. प्र०—नारकियोंके दो भेद कौनसे हैं ?

उ०—पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक।

१५३. प्र०—देवोंके दो भेद कौनसे हैं ?

उ०—पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक।

१५४. प्र०—पर्याप्तक किसे कहते हैं ?

उ०—जिस जीवकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो गई है उसको पर्याप्तक कहते हैं।

१५५. प्र०—निर्वृत्त्यपर्याप्तक किसे कहते हैं ?

उ०—जब तक जीवकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण न हुई हो, किन्तु नियमसे पूर्ण होनेवाली हो, तब तक उस जीवको निर्वृत्त्यपर्याप्तक कहते हैं।

१५६. प्र०— लब्ध्यपर्याप्तक किसे कहते हैं ?

उ०—जिस जीवकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो और श्वासके अठारहवें भागमें ही मरण होनेवाला हो उसको लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं।

१५७. प्र०—पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—आहार वर्गणा, भाषा वर्गणा, और मनोवर्गणाके परमाणुओंको शरीर आदि रूप परिणमानेकी शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते हैं।

१५८. प्र०—पर्याप्तिके कितने भेद हैं ?

उ०—पर्याप्तिके छै भेद हैं—आहार पर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति।

१५९. प्र०—आहार पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—आहारवर्गणाके परमाणुओंको खल और रसभाग रूप परिणमानेकी कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको आहारपर्याप्ति कहते हैं।

१६०. प्र०—शरीरपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०— जिन परमाणुओंको खल रूप परिणमाया था उनको हाड़ वगैरह कठिन अवयवरूप और जिनको रसरूप परिणमाया था उनको रुधिर आदि रूप परिणमानेकी कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

१६१. प्र०—इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—आहारवर्गणाके परमाणुओंको इन्द्रियके आकाररूप परिणमानेमें तथा इन्द्रिय द्वारा विषय ग्रहण करनेमें कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं।

१६२. प्र०—श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—आहार वर्गणाके परमाणुओंको श्वासोच्छ्वास रूप परिणमानेमें कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

१६३ प्र०—भाषा पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—भाषावर्गणाके परमाणुओंको वचनरूप परिणमानेमें कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

१६४. प्र०—मनःपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—मनोवर्गणाके परमाणुओंको द्रव्य मनरूप परिणमानेमें तथा उसके द्वारा गुण दोषका विचार, बीती बातका स्मरण आदि कार्य करनेमें कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको मनःपर्याप्ति कहते हैं।

१७०—लब्ध्यपर्याप्तक जीव एक अन्तर्मुहूर्तमें कितने जन्म धारण करता है ?

उ०—छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस ।

१७१. प्र०—योनि किसे कहते हैं ?

उ०—जीवके उत्पत्ति स्थानको योनि कहते हैं ।

१७२. प्र०—योनिके कितने भेद हैं ?

उ०—दो, आकार योनि और गुण योनि ।

१७३. प्र०—आकार रूप योनिके कितने भेद हैं ?

उ०—स्त्रीके शरीरमें होनेवाली आकार रूप योनिके तीन भेद हैं—शंखावर्त योनि, कूर्मोन्नत योनि और वंशपत्र योनि ।

१७४. प्र०—किस योनिमें कौन उत्पन्न होता है ?

उ०—शंखावर्तक योनिमें तो गर्भ नहीं रहता । कूर्मोन्नत योनिमें तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण आदि उत्पन्न होते हैं और वंशपत्र योनिमें जनसाधारण उत्पन्न होते हैं ।

१७५. प्र०—गुण योनिके कितने भेद हैं ?

उ०—नौ सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत, विवृत, संवृतविवृत।

१७६. प्र०—सचित्त आदिका क्या स्वरूप है ?

उ०—चेतन सहित पुद्गल स्कन्धको सचित्त कहते हैं। उससे विपरीतको अचित्त कहते हैं। जो पुद्गल स्कन्ध सचित्त अचित्त दोनों रूप होते हैं उन्हें सचित्ताचित्त कहते हैं। शीत स्पर्शसे युक्त पुद्गल स्कन्धको शीत कहते हैं। उष्ण स्पर्शसे युक्त पुद्गल स्कन्धको उष्ण कहते हैं। जो पुद्गल उभय रूप हों उन्हें शीतोष्ण कहते हैं। जिस पुद्गल स्कन्धका आकार गुप्त होता है, जिससे उसे देखा नहीं जा सकता, उसे संवृत कहते हैं। जिसको देखा जा सकता है उसे विवृत कहते हैं। और जो दोनों रूप हो उसे संवृतविवृत कहते हैं।

१७७. प्र०—किस जन्मवालोंकी कौन योनि होती है ?

उ०—उपपाद जन्मवालोंकी अचित्त, शीत या उष्ण और संवृत योनि होती है। गर्भ जन्मवालोंकी सचित्ताचित्त, शीत उष्ण या शीतोष्ण और संवृत योनि होती है। सम्मूर्छन जन्मवालोंकी सचित्त अचित्त या सचित्ताचित्त, शीत उष्ण या शीतोष्ण और संवृत अथवा विवृत योनि होती है। इतना विशेष है कि तेजस्कायिक जीवोंकी योनि उष्ण ही होती है। तथा एकेन्द्रियोंकी योनि संवृत और विकलेन्द्रियोंकी विवृत होती है।

१७८. प्र०—योनि और जन्ममें क्या भेद है ?

उ०—योनि आधार है, जन्म आधेय है, क्योंकि सचित्त आदि योनियोंमें जीव सम्मूर्छन आदि जन्म लेकर उत्पन्न होता है।

१७९ प्र० - विस्तारसे योनिके भेद कितने हैं ?

उ०—विस्तारसे योनिके भेद चौरासी लाख हैं—नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक इन छहोंमेंसे प्रत्येककी सात सात लाख योनियाँ हैं। प्रत्येक वनस्पतिकी दस लाख योनियाँ हैं। दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियमेंसे प्रत्येककी दो दो लाख योनियाँ हैं। देव नारकी और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमेंसे प्रत्येककी चार चार लाख योनियाँ हैं और मनुष्योंकी चौदह लाख योनियाँ हैं।

१८०. प्र०—जन्मके कितने भेद हैं ?

उ०—तीन - सम्मूर्छन जन्म, गर्भ जन्म और उपपाद जन्म।

१८६. प्र०—कौनसे जीवोंके कौन लिंग होता है ?

उ०—नारकी और सम्मूर्छन जीवोंके नपुंसक लिंग ही होता है। देवोंके पुल्लिंग और स्त्रीलिंग ही होता है, शेष जीवोंके तीनोंमेंसे कोई भी लिंग होता है।

१८७. प्र०—प्राण किसे कहते हैं ?

उ०—जिनके संयोगसे यह जीव जीवन अवस्थाको और वियोगसे मरण अवस्थाको प्राप्त होता है उन्हें प्राण कहते हैं।

१८८. प्र०—प्राणके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—द्रव्यप्राण और भावप्राण।

१८९. प्र०—द्रव्यप्राण किसको कहते हैं ?

उ०—पुद्गलद्रव्यसे उत्पन्न हुए द्रव्य इन्द्रिय वगैरहकी प्रवृत्तिको द्रव्यप्राण कहते हैं।

१९०. प्र०—भावप्राण किसे कहते हैं ?

उ०—आत्माकी जिस शक्तिके निमित्तसे इन्द्रिय वगैरह अपने कार्यमें प्रवृत्त हों, उसे भावप्राण कहते हैं।

१९१. प्र०—द्रव्यप्राणके कितने भेद हैं ?

उ०—दस हैं—मन, वचन, काय, स्पर्शनइन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय, घ्राणइन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, श्रोत्रइन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और आयु।

१९२. प्र०—किस जीवके कितने प्राण होते हैं ?

उ०—सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके दसों प्राण होते हैं। असैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके मनके बिना नौ प्राण होते हैं। चौइन्द्रियके मन और श्रोत्र इन्द्रियके बिना आठ प्राण होते हैं। तेइन्द्रियके मन, श्रोत्र और चक्षुइन्द्रियके बिना सात प्राण होते हैं। दोइन्द्रियके मन, श्रोत्र, चक्षु और घ्राण इन्द्रियके बिना छै प्राण होते हैं। एकेन्द्रियके स्पर्शनइन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये चार प्राण होते हैं। यह पर्याप्त अवस्थाकी अपेक्षा जानना। अपर्याप्त दशामें सैनी और असैनी पञ्चेन्द्रियके सात प्राण ही होते हैं, क्योंकि श्वासोच्छ्वास, वचनबल और मनोबल ये तीन प्राण पर्याप्त दशामें ही होते हैं। चौइन्द्रियके श्रोत्रके बिना छै, तेइन्द्रियके चक्षुके बिना पाँच, दो इन्द्रियके घ्राणके बिना चार और एकेन्द्रिय अपर्याप्तके रसनाके बिना तीन ही प्राण होते हैं।

१९३. प्र०—पर्याप्ति और प्राणमें क्या भेद है ?

उ०—पर्याप्ति कारण है, प्राण कार्य है।

१९४. प्र०—संज्ञा किसे कहते हैं ?

उ०—वाञ्छा (चाह) को संज्ञा कहते हैं।

१९५ प्र०—संज्ञाके कितने भेद हैं ?

उ०—चार हैं—आहार, भय, मैथुन और परिग्रह।

१९६ प्र०—उपयोग किसे कहते हैं ?

उ०—जीवके लक्षणरूप परिणामको, जो चैतन्यके होनेपर ही होता है, उपयोग कहते हैं।

१९७. प्र०—उपयोगके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—साकार उपयोग और अनाकार उपयोग।

१९१. गो० जी०, गा० १३० ।

२०३. प्र०—गतिके कितने भेद हैं ?

उ०—चार हैं—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति ।

२०४. प्र०—किस गतिमें कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—देवगति और नरकगतिमें आदिके चार गुणस्थान होते हैं, तिर्यञ्च-गतिमें आदिके पांच गुणस्थान होते हैं, और मनुष्यगतिमें चौदह गुणस्थान होते हैं ।

२०५. प्र०—इन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ०—आत्माके चिह्न विशेषको इन्द्रिय कहते हैं ।

२०६. प्र०—इन्द्रियके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय ।

---

१९९. गो० जी० गा० १४१ ।

२७०. प्र०—गोमूत्रिका गति किसको कहते हैं ?

उ०—जैसे गायका चलते हुए मूत्र करना अनेक मोड़ोंवाला होता है उसी प्रकार तीन मोड़ेवाली गतिको गोमूत्रिका कहते हैं। यह भी चार समयवाली होती है।

२७१. प्र०—चार मोड़ेवाली गति क्यों नहीं होती ?

उ०—लोकके मध्यसे लेकर ऊपर, नीचे और तिर्यक् क्रमसे विद्यमान आकाश के प्रदेशोंकी पंक्तिको श्रेणि कहते हैं। इस श्रेणिके अनुसार ही जीवोंका गमन होता है। श्रेणिका उल्लंघन करके गमन नहीं होता। इसलिये ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँपर पहुँचनेके लिए चार मोड़े लेने पड़ें।

२७२. प्र०—समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—मूल शरीरको विना छोड़े जीवके प्रदेशोंके वाहर निकलनेको समुद्घात कहते हैं।

२७३. प्र०—समुद्घातके कितने भेद हैं ?

उ०—सात भेद हैं - वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, विक्रिया समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात और केवली समुद्घात।

२७४. प्र०—वेदना समुद्घात वगैरहका क्या स्वरूप है ?

उ०—बहुत पीड़ाके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंके वाहर निकलनेको वेदना समुद्घात कहते हैं। क्रोध आदि कषायके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंके वाहर निकलनेको कषाय समुद्घात कहते हैं। विक्रियाके निमित्तसे आत्मप्रदेशोंके वाहर निकलनेको विक्रिया समुद्घात कहते हैं। मरण होनेसे पहले नवीन पर्याय धारण करनेके क्षेत्र पर्यन्त प्रदेशोंके वाहर निकलनेको मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं। अशुभ या शुभ तैजसके साथ आत्मप्रदेशोंके वाहर निकलनेको तैजस समुद्घात कहते हैं। प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनिके आहारक शरीरके साथ आत्मप्रदेशोंके वाहर निकलनेको आहारक समुद्घात कहते हैं। और केवलज्ञानीके समुद्घातको केवलि समुद्घात कहते हैं।

२७५. प्र०—केवली समुद्घात क्यों करते हैं ?

उ०—आयु कर्मकी स्थितिसे अन्य तीन कर्मोंकी स्थिति अधिक होनेपर उनकी स्थिति भी आयु कर्मके समान करनेके लिए केवली समुद्घात करते हैं।

२७६. प्र०—सभी केवली समुद्घात करते हैं क्या?

उ०—यतिवृषभ आचार्यके मतसे सभी केवली समुद्घात करके ही मुक्त होते हैं। अन्य आचार्योंके मतसे कुछ केवली समुद्घात करते हैं और कुछ नहीं करते।

२७७. प्र०—केवली समुद्घातमें कितना समय लगता है।

उ०—केवली समुद्घातमें आठ समय लगते हैं—पहले समयमें आत्मप्रदेशोंको फैलाकर दण्डके आकार करते हैं। दूसरे समयमें कपाटके आकार करते हैं। तीसरे समयमें प्रतररूप करते हैं और चौथे समयमें आत्मप्रदेशोंसे लोकको पूर देते हैं। पाँचवें समयमें लोकपूरणसे प्रतररूप, छठेमें प्रतरसे कपाटरूप, सातवेंमें कपाटसे दण्डरूप और आठवेंमें फिरसे शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं।

२७८. प्र०—एक कालमें योग कितने होते हैं?

उ०—एक कालमें एक जीवके एक ही योग होता है।

२७९. प्र०—वेद किसको कहते हैं?

उ०—चारित्र मोहनीयके भेद पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदरूप नोकषायके उदयसे उत्पन्न हुई मैथुनकी अभिलाषाको भाववेद कहते हैं। और नामकर्मके उदयसे शरीरमें प्रकट होनेवाले चिह्न विशेषको द्रव्यवेद कहते हैं।

२८०. प्र०—वेदके कितने भेद हैं?

उ०—तीन हैं—पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद।

२८१. प्र०—भाववेद और द्रव्यवेद समान ही होते हैं या असमान भी?

उ०—देव, नारकी, भोगभूमिया तिर्यंच और मनुष्योंके जैसा द्रव्यवेद होता है वैसा ही भाववेद भी होता है। किन्तु कर्मभूमिया मनुष्य और तिर्यंचोंके किन्हींके तो जैसा द्रव्यवेद होता है वैसा ही भाववेद होता है और किन्हींके द्रव्यवेद दूसरा होता है और भाववेद दूसरा होता है।

२८२ प्र०—भाववेद किस गुणस्थान तक होता है?

उ०—नौवें गुणस्थानके सवेद भाग पर्यन्त होता है। इसके आगे जीव वेद-रहित होते हैं।

२८३. प्र०—किन जीवोंमें कौनसा वेद होता है?

उ०—नारकी नपुंसकवेदी ही होते हैं। देवोंमें स्त्री और पुरुष दो ही वेद होते हैं। मनुष्य और तिर्यञ्चोंमें तीनों वेद पाये जाते हैं।

२८४. प्र०—कषाय किसको कहते हैं?

उ०—जो जीवके कर्मरूपी खेतका कर्षण करता है उसे कषाय कहते हैं।

२९९. प्र०—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—जो श्रुतज्ञान अक्षरोंके निमित्तसे उत्पन्न नहीं होता किन्तु लिंग (चिह्न) के निमित्तसे उत्पन्न होता है उसे अनक्षरात्मक अथवा लिंगज श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे शीतलवायुका स्पर्श होनेपर शीतलवायुका जानना तो मतिज्ञान है और उसके पश्चात् ही वातप्रकृतिवालेको यह शीतलवायु हानिकर है ऐसा जानना अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

३००. प्र०—अक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—अक्षररूप शब्दके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाले श्रुतज्ञानको अक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे, जीव है ऐसा कहने पर श्रोत्रेन्द्रियके द्वारा जो शब्दका ज्ञान हुआ वह तो मतिज्ञान है, और उस ज्ञानके पश्चात् जीव नामक पदार्थ है ऐसा जो ज्ञान हुआ वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

३०१. प्र०—अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—एक अंगप्रविष्ट और दूसरा अंगबाह्य।

३०२. प्र०—अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—भगवान् तीर्थङ्करने केवलज्ञानके द्वारा सब पदार्थोंको जानकर दिव्य ध्वनिके द्वारा उपदेश दिया। उनके साक्षात् शिष्य गणधरने उस उपदेशको अपनी स्मृतिमें रखकर बारह अंगोंमें संकलित किया। यह अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान है।

३०३. प्र०—अंगबाह्य श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—आचार्योंने अल्पबुद्धि शिष्योंपर दया करके उन अंग ग्रन्थोंके आधार पर जो ग्रन्थ रचे वे अंगबाह्य कहलाते हैं।

३०४. प्र०—अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानके भेद कितने हैं ?

उ०—बारह हैं—आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृ-धर्मकथा, उपासकाध्ययन,, अन्तःकृद्दश, अनुत्तरोपपादिकदश, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवाद।

३०५. प्र०—बारहवें दृष्टिवाद अंगके कितने भेद हैं ?

उ०—पाँच भेद हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्व और चूलिका।

३०६. प्र०—पूर्वके कितने भेद हैं ?

३०४—अंग प्रविष्ट श्रुतज्ञानके बारह भेदोंमें किन-किन विषयोंका वर्णन है यह जानने के लिए देखो—जयधवला, १ भाग पृ० १२२–१३२।

उ०—सामायिक अथवा छेदोपस्थापना संयमको धारण करनेवाले मुनिकी कषाय जब अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है तब वे सूक्ष्मसाम्पराय संयमी कहे जाते हैं।

३३४. प्र०—यथाख्यात संयम किसको कहते हैं ?

उ०—समस्त मोहनीयकर्मके उपशमसे अथवा क्षयसे जैसा आत्माका निर्विकार स्वभाव है वैसा ही स्वभाव हो जाना यथाख्यात चारित्र है।

३३५. प्र०—संयमासंयम किसको कहते हैं ?

उ०—सम्यग्दर्शनपूर्वक पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंके धारण करनेको संयमासंयम कहते हैं।

३३६. प्र०—असंयम किसको कहते हैं ?

उ०—जीव हिंसा और इन्द्रियोंके विषयोंसे विरत न होनेको असंयम कहते हैं।

३३७. प्र०—किन गुणस्थानोंमें कौन सा संयम होता है ?

उ०—सामायिक और छेदोपस्थापना छठेसे नौवें गुणस्थान तक होते हैं। परिहारविशुद्धि छठे और सातवें गुणस्थानमें होता है। सूक्ष्मसाम्पराय संयम केवल दसवें गुणस्थानमें होता है। यथाख्यात संयम ग्यारहसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तक होता है। संयमासंयम पाँचवें गुणस्थानमें होता है और असंयम आदिके चार गुणस्थानमें होता है।

३३८. प्र०—दर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—सामान्य विशेषात्मक वाह्य पदार्थोंको अलग-अलग भेद रूपसे ग्रहण न करके जो सामान्य ग्रहण होता है उसको दर्शन कहते हैं। अर्थात् विषय और विषयीके योग्य देशमें होनेकी पूर्वावस्थाको दर्शन कहते हैं।

३३९ प्र०—दर्शन कब होता है ?

उ०—ज्ञानके पहले दर्शन होता है। बिना दर्शनके अल्पज्ञानियोंको ज्ञान नहीं होता। परन्तु सर्वज्ञ देवके ज्ञान और दर्शन एक साथ होते हैं।

३४०. प्र०—दर्शनके कितने भेद हैं ?

उ०—चार—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

३४१. प्र०—चक्षुदर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—चक्षु इन्द्रियसे होनेवाले मतिज्ञानके पहले जो सामान्य ग्रहण होता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं।

१४२ प्र०—अचक्षुदर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—चक्षुके सिवाय अन्य इन्द्रियों और मन सम्बन्धी मतिज्ञानके पहले जो सामान्य ग्रहण होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं।

१४३. प्र०—अवधिदर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—अवधिज्ञानसे पहले होनेवाले सामान्य ग्रहणको अवधिदर्शन कहते हैं।

१४४. प्र०—केवलदर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—केवलज्ञानके साथ होनेवाले सामान्य ग्रहणको केवल दर्शन कहते हैं।

१४५. प्र०—कौन सा दर्शन किन गुणस्थानोंमें होता है ?

उ०—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन बारहवें गुणस्थान तक होते हैं। अवधिदर्शन चौथेसे बारहवें गुणस्थान तक होता है। और केवल दर्शन तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानमें और सिद्धोंमें होता है।

१४६. प्र०—लेश्या किसको कहते हैं ?

उ०—कषायसे अनुरंजित काययोग, वचनयोग और मनोयोगकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं।

१४७ प्र०—लेश्याके कितने भेद हैं ?

उ०—कषायका उदय छै प्रकारका होता है—तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर, मन्दतम, कषायके उदयके इन छै प्रकारोंके अनुसार लेश्याके भी छै भेद होते हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, पीतलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या।

१४८ प्र०—कौन लेश्या किन गुणस्थानोंमें होती है ?

उ०—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या चौथे गुणस्थान तक, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या सातवें गुणस्थान तक और शुक्ललेश्या तेरहवें गुणस्थान तक होती है।

१४९. प्र०—भव्य मार्गणाके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—भव्य और अभव्य।

१५०. प्र०—भव्य अभव्य किसको कहते हैं ?

१४८—इस सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिए देखो—[illegible] पृ० ११६-११९।

उ०—जो जीव आगे मुक्ति प्राप्त करेंगे उन्हें भव्य कहते हैं। और मुक्ति गमनकी योग्यता न रखनेवाले जीवोंको अभव्य कहते हैं।

३५१. प्र०—भव्य-अभव्यके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—भव्य जीवोंके चौदह गुणस्थान होते हैं और अभव्योंके केवल एक पहला गुणस्थान ही होता है।

३५२. प्र०—सम्यक्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहे गये छै द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थोंका श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहते हैं।

३५३. प्र०—सम्यक्त्व मार्गणाके कितने भेद हैं ?

उ०—छै भेद हैं—उपशम सम्यक्त्व, वेदक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सासादन सम्यक्त्व और मिथ्यात्व।

३५४. प्र०—उपशम सम्यक्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व मोहनीय, इन सात कर्मप्रकृतियोंके उपशमसे, कीचड़के नीचे बैठ जानेसे निर्मल हुए जलके समान जो पदार्थोंका निर्मल श्रद्धान होता है उसे उपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसके दो भेद है–प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व।

३५५. प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसको होता है ?

उ०—चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें वर्तमान भव्य, सैनी पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक, विशुद्ध परिणामी साकार उपयोगी, शुभलेश्या वाले और करणलब्धिसे सहित अनादि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीवको ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्ति होती है।

३५६. प्र०—लब्धियाँ कितनी हैं ?

उ०—पाँच हैं—क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धि लब्धि, देशना लब्धि, प्रायोग्य लब्धि और करण लब्धि। इनमेंसे चार लब्धियाँ तो भव्य अभव्य सभीके होती हैं, किन्तु करण लब्धि भव्यके ही होती है और उसके होने पर सम्यक्त्व अवश्य होता है।

३५७. प्र०—क्षयोपशम लब्धि किसको कहते हैं ?

३५३—लब्धिसार, गा० २।

उ०—जिस समय कर्मोंका अनुभाग प्रतिसमय अनन्तगुणा घटता हुआ उदयमें आता है तब क्षयोपशम लब्धि होती है। क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागके अनन्तवें भाग मात्र देशघाती स्पर्द्धकोंका उदयाभाव रूप क्षय और उदयको न प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकोंका सदवस्था रूप उपशमकी प्राप्तिका नाम क्षयोपशम लब्धि है।

१५८ प्र०—विशुद्धि लब्धि किसको कहते हैं?

उ०—क्षयोपशम लब्धिके होने से साता वेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके बन्धमें कारण जो धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होता है उसकी प्राप्तिको विशुद्धि लब्धि कहते हैं।

१५९ प्र०—देशना लब्धि किसको कहते हैं?

उ०—छै द्रव्य और नौ पदार्थोंका उपदेश करनेवाले आचार्य आदिके लाभको अथवा उपदेशित पदार्थोंके धारणके लाभको देशनालब्धि कहते हैं।

१६० प्र०—प्रायोग्य लब्धि किसको कहते हैं?

उ०—ऊपर कही गयी तीन लब्धियोंसे युक्त जीव प्रति समय विशुद्ध होता हुआ, आयुके बिना शेष सात कर्मोंकी स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कर सकता है। तथा पहले जो अनुभाग था उसके अनन्तका भाग देने पर बहुभाग प्रमाण अनुभागको छेदकर एक भाग प्रमाण अनुभागको रखता है। इन कार्योंके करनेकी योग्यताके लाभको प्रायोग्य लब्धि कहते हैं।

१६१ प्र०—करण लब्धि किसको कहते हैं?

उ०—अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणामोंके लाभको करण लब्धि कहते हैं। इनका स्वरूप पहले कहा जा चुका है।

१६२ प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति किस प्रकार होती है?

तो मिथ्यात्वका उदय होता है और यदि मिश्रदृष्टि था तो मिथ्यादृष्टि होकर वेदक अथवा उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है या सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है।

३६४. प्र०—अन्तरकरण किसको कहते हैं?

उ०—जिस कर्मका अन्तरकरण करना हो उसकी प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थितिको छोड़कर मध्यकी अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थितिके निषेकोंका अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं। जैसे, मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्वकर्मका अन्तरकरण करता है। इसमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। सो वह अनादिकालसे उदयमें आने-वाले मिथ्यात्वकर्मकी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति सम्बन्धी निषेकोंको छोड़कर उससे ऊपरके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिके निषेकोंको अपने स्थानसे उठा-उठाकर कुछको प्रथम स्थिति (नीचेकी स्थिति) सम्बन्धी निषेकोंमें मिला देता है और कुछको द्वितीय स्थिति (ऊपरकी स्थिति) सम्बन्धी निषेकोंमें मिला देता है। इस तरह वह तब तक करता रहता है जबतक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिके पूरे निषेक समाप्त न हो जायें। जब मध्यवर्ती समस्त निषेक ऊपरकी अथवा नीचेकी स्थितिके निषेकोंमें दे दिये जाते हैं और प्रथम स्थिति तथा द्वितीय स्थितिके बीचका अन्तरायाम मिथ्यात्व कर्मके निषेकोंसे सर्वथा शून्य हो जाता है तब अन्तरकरण पूर्ण हो जाता है।

३६५. प्र०—वेदक अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व किसको कहते हैं?

उ०—अनन्तानुबन्धी कषायका अप्रशस्त उपशम अथवा विसंयोजन होनेपर और मिथ्यात्व तथा सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिका प्रशस्त उपशम अथवा अप्रशस्त उपशम अथवा क्षयोन्मुख होने पर, तथा देशघाती सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होने पर जो तत्त्वार्थश्रद्धान होता है उसे वेदकसम्यक्त्व कहते हैं। इसीको क्षायोप-शमिक सम्यक्त्व भी कहते हैं। क्योंकि सर्वघाती अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्वका उदयाभाव रूप क्षय तथा सदवस्थारूप उपशम होनेपर और देशघाती सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर वेदक सम्यक्त्व होता है। इससे इसीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है।

३६६. प्र०—अप्रशस्त उपशम या देशोपशम किसे कहते हैं?

उ०—जिसमें विवक्षित प्रकृति उदय आने योग्य तो न हो किन्तु उसका स्थिति अनुभाग घटाया बढ़ाया जा सके अथवा संक्रमण वगैरह किये जा सकें, उसे अप्रशस्त उपशम या देशोपशम कहते हैं।

३६७. प्र०—प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम किसको कहते हैं?

उ०—जिसमें विवक्षित प्रकृति न तो उदय आने योग्य ही हो और न उसका स्थिति अनुभाग घटाया जा सके तथा न संक्रमण योग्य ही किया जा सके उसे प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम कहते है ?

२६८. प्र०—वेदक सम्यक्त्व की स्थिति कितनी है ?

उ०—वेदक सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति छियासठ सागर प्रमाण है।

२६९ प्र० – क्षायिक सम्यक्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन सात प्रकृतियोंके क्षय से जो निर्मल श्रद्धान होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है।

२७०. प्र०—क्षायिक सम्यक्त्व की उत्पत्ति का क्या क्रम है ?

उ०—असंयत, देश संयत, प्रमत्त संयत अथवा अप्रमत्त इनमें से किसी गुणस्थान-वर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि मनुष्य पहले तो अधःकरण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके अन्तमें अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ का विसंयोजन करता है अर्थात् उन्हें बारह कषाय और नव नोकषाय रूप कर देता है। उसके पश्चात् दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ करता है

२७१. प्र०—दर्शन मोहकी क्षपणाका प्रारम्भ कहाँ करता है ?

करणके अन्त समयमें सम्यक्त्व [illegible] क्षेपण करनेके पश्चात् अनन्तर समयसे [illegible] भाग मात्र अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त [illegible] वेदक कहा जाता है [illegible] जिसने करने योग्य कार्य कर लिया [illegible] दर्शनमोहकी क्षपणाके योग्य कार्य अनिवृत्तिकरण कालके अन्त समयमें [illegible] जाता है। अतः वह कृतकृत्य वेदक कहा जाता है।

३७५. प्र०—दर्शन मोहकी क्षपणाका निष्ठापन कहाँ करता है ?

उ०—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका आरम्भ करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य वेदक होनेके पश्चात् आयुका क्षय होनेसे यदि मरणको प्राप्त होता है तो सम्यक्त्व ग्रहण करनेसे पहले बाँधी हुई आयुके अनुसार चारों गतियोंमें उत्पन्न होकर दर्शन मोहनीयकी क्षपणाको पूर्ण करता है। उसमें इतना विशेष है कि कृतकृत्य वेदकके कालके चार भाग करके उनमेंसे यदि प्रथम भागमें मरता है तो नियमसे देव ही होता है, दूसरे भागमें मरनेसे देव या मनुष्य होता है, तीसरे भागमें मरनेसे देव मनुष्य या तिर्यञ्च होता है और चौथे भागमें मरनेसे चारोंमेंसे किसी भी गतिमें जन्म लेता है।

३७६. प्र०—क्षायिक सम्यक्त्वकी कितनी स्थिति है ?

उ०—अन्य सम्यक्त्वोंकी तरह क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होकर छूटता नहीं है। फिर भी क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके पश्चात् क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवके संसारमें रहनेकी अपेक्षासे क्षायिक सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त आठ वर्ष कम दो पूर्व कोटी और तैंतीस सागरसे कुछ अधिक है क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम तो उसी भवसे मुक्त हो जाता है जिस भवमें उसने दर्शनमोहका क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया है। यदि क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करनेसे पहले उसने पर भवकी आयु बाँध ली हो तो वह तीसरे भवसे मुक्त हो जाता है और यदि उसने मनुष्य या तिर्यञ्चकी आयु बाँधी हो तो चौथे भवमें अवश्य मुक्त हो जाता है।

३७७. प्र०—क्षायिक सम्यक्त्व किन गुणस्थानोंमें रहता है ?

उ०—चौथेसे चौदहवें गुणस्थान तक।

३७८. प्र०—औपशमिक सम्यक्त्व कितने गुणस्थानोंमें रहता है ?

उ०—प्रथमोपशम सम्यक्त्व चौथेसे सातवें गुणस्थान तक और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चौथेसे ग्यारहवें गुणस्थान तक रहता है।

---

३७५. षट्खण्डागम, पु० ४, पृ० २६।

२७९. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कितने गुणस्थानोंमें रहता है ?

उ०—चौथेसे सातवें गुणस्थान तक।

२८०. प्र०—किस गतिमें कितने सम्यक्त्व होते हैं ?

उ०—प्रथम नरकमें तीनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं, किन्तु शेष ६ नरकोंमें क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता। तिर्यंचों, मनुष्यों और देवोंमें तीनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं। केवल इतनी विशेषता है कि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें तथा देवियोंमें क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता।

२८१. प्र०—संज्ञी किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीव मनकी सहायतासे शिक्षा उपदेशको ग्रहण कर सकता है उसे संज्ञी कहते हैं और जो ऐसा नहीं कर सकता उसे असंज्ञी कहते हैं ?

२८२. प्र०—संज्ञीके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—संज्ञीके प्रथमसे लेकर बारह गुणस्थान होते हैं और असंज्ञीके केवल एक पहला गुणस्थान ही होता है।

२८३. प्र०—आहारक किसको कहते हैं ?

उ०—औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरोंमेंसे उदयसे किसी एक शरीर, भाषा तथा मनके योग्य पुद्गल वर्गणाओंको जो जीव निरन्तर ग्रहण करता है उसे आहारक कहते हैं, और औदारिक आदि शरीरोंके योग्य पुद्गल वर्गणाओंको ग्रहण न करनेवाले जीवोंको अनाहारक कहते हैं।

२८४. प्र०—अनाहारक जीव कौन हैं ?

उ०—विग्रह गतिके जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली तथा अयोगकेवली और सिद्ध जीव [illegible] ये जीव अनाहारक होते हैं।

२८५. प्र०—आहारकके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—आहारकके पहलेसे लेकर तेरह गुणस्थान तक होते हैं।

२८६. प्र०—अनाहारकके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०—अनाहारकके पांच गुणस्थान होते हैं—पहला, दूसरा, चौथा, तेरहवां और चौदहवां।

३८७. प्र०—अनुयोगद्वार कितने हैं ?

उ०—सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व ये आठ अनुयोगद्वार हैं।

३८८. प्र०—अनुयोगद्वारोंका क्या प्रयोजन है ?

उ०—ये आठ अनुयोगद्वार अर्थात् अधिकार अवश्य ही जानने चाहिये क्योंकि इनकी जानकारीके बिना गुणस्थान और मार्गणास्थानोंका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो सकता।

३८९. प्र०—सत्प्ररूपणा किसका कथन करती है ?

उ०—सत्प्ररूपणा पदार्थोंके अस्तित्वका कथन करती है। उस कथन के दो प्रकार हैं—एक ओघ कथन और एक आदेश कथन। सामान्य कथनको ओघ कहते हैं। जैसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है, सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान है, आदि। और विशेष रूपसे कथन करनेको आदेश कहते हैं। जैसे, नारकी जीवोंके चार गुणस्थान होते हैं, तिर्यञ्चोंके पांच गुणस्थान होते हैं आदि।

३९०. प्र०—संख्या अनुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—सत्प्ररूपणामें जिन पदार्थोंका अस्तित्व कहा गया है उनकी संख्याका कथन संख्या अनुयोगमें होता है। जैसे, मिथ्यादृष्टि अनन्त हैं, सासादन सम्यग्दृष्टि पल्यके असंख्यातवें भाग है। इस कथनके भी दो प्रकार हैं--ओघ और आदेश।

३९१. प्र०—क्षेत्र अनुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—उक्त दोनों अनुयोगोंके द्वारा जाने हुए द्रव्योंकी वर्तमान अवगाहनाका कथन क्षेत्रानुयोग करता है। जैसे मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोकमें रहते हैं, इसके भी पूर्ववत् दो भेद हैं।

३९२. प्र०—स्पर्शनानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—उक्त तीन अनुयोगोंके द्वारा जाने हुए द्रव्योंके अतीतकाल विशिष्ट क्षेत्रका कथन अर्थात् भूतकालमें जितने क्षेत्रको स्पर्श किया है और वर्तमानमें जितने क्षेत्रको स्पर्श किया जा रहा है, उसका कथन स्पर्शनानुयोग करता है। इस कथनके भी पूर्ववत् दो प्रकार हैं।

३९३ प्र०—कालानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—पूर्वोक्त चार अनुयोगोंके द्वारा जाने गये द्रव्योंके कालका कथन कालानुयोग

करता है। जैसे मिथ्यादृष्टि जीव सर्वदा पाये जाते हैं। इसके भी पूर्ववत् दो प्रकार हैं।

३९४. प्र०—अन्तरानुयोग किसका कथन करता है?

उ०—जिन पदार्थोंके अस्तित्व, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, और कालका ज्ञान हो गया है उनके अन्तर कालका कथन अन्तरानुयोग करता है। जैसे एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तरकाल कमसे कम अन्तर्मुहूर्त है।

३९५. प्र०—भावानुयोग किसका कथन करता है?

उ०—उक्त अनुयोगोंके द्वारा ज्ञात द्रव्योंके भावोंका कथन भावानुयोग करता है। जैसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें औदयिक भाव होता है, आदि। इस कथनके भी पूर्ववत् दो प्रकार हैं।

३९६. प्र०—अल्पबहुत्वानुयोग किसका कथन करता है?

उ०—उक्त अनुयोगोंके द्वारा जाने हुए द्रव्यों में अल्प-बहुत्व हीनता—अधिकताका—कथन अल्पबहुत्वानुयोग करता है। इस कथनके भी पूर्ववत् दो प्रकार हैं।

३९७ प्र०—मिथ्यादृष्टि जीव कितने हैं?

उ०—अनन्त हैं।

३९८. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने हैं?

उ०—पल्योपम असंख्यातवें भाग हैं?

३९९ प्र०—प्रमत्त संयत जीव कितने हैं।

उ०—कोटिपृथक्त्व प्रमाण हैं। पृथक्त्व [illegible] और [illegible] कोटिके नीचे गिनती [illegible] है [illegible]। [illegible] प्रमाण पाँच करोड़, तिरानबे लाख अट्ठानबे हजार दो सौ छह है।

४०० प्र०—अप्रमत्त संयत जीव कितने हैं?

उ०—संख्यात हैं, अर्थात् प्रमत्तसंयत जीवोंके प्रमाणसे [illegible] प्रमाण आधा है, क्योंकि प्रमत्त गुणस्थान [illegible] [illegible] संख्यातगुणा हीन है।

४०१ प्र०—उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें प्रवेशका प्रमाण कितना है?

उ०—उपशम श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें एक समयमें कमसे कम एक जीव प्रवेश करता है और उत्कृष्टसे अधिक [illegible] प्रवेश करते हैं। [illegible]

है। विशेषमें ऐसा है कि निरन्तर आठ समय पर्यन्त उपशम श्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंमें अधिकसे अधिक प्रथम समयमें सोलह, दूसरे समयमें चौबीस, तीसरे समयमें तीस, चौथे समयमें छत्तीस, पाँचवें समयमें बयालीस, छठे समयमें अड़तालीस, सातवें समयमें चौवन और आठवें समयमें भी चौवन जीव उपशम श्रेणी पर चढ़ते हैं। इस तरह इनका प्रमाण तीन सौ चार होता है।

४०२. प्र०—क्षपक श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें जीवोंका प्रमाण कितना है?

उ०—छै महीना आठ समयमें क्षपक श्रेणीके योग्य आठ समय होते हैं। इनमें जघन्यसे एक जीव एक समयमें और उत्कृष्टसे एक सौ आठ जीव क्षपक गुणस्थानमें प्रवेश करते हैं। यह सामान्य कथन है। विशेषमें क्षपकश्रेणीवालोंका प्रमाण उपशम श्रेणीवालोंसे दुगुना है।

४०३. प्र०—सयोगकेवली जीव कितने हैं?

उ०—सयोगकेवली जीवोंकी संख्या आठ लाख अट्ठानवे हजार पांच सौ दो है।

४०४. प्र०—अयोगकेवली जीव कितने हैं?

उ०—अयोगकेवली जीवोंका प्रमाण क्षपक श्रेणीवाले जीवोंके बराबर ही होता है।

४०५. प्र०—मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं?

उ०—सर्वलोकमें रहते हैं।

४०६ प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं?

उ०—लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। किन्तु इतना विशेष है कि प्रतर समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली लोकके असंख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्रमें और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली सर्वलोकमें रहते हैं।

४०७. प्र०—मिथ्यादृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है?

उ०—सर्वलोक स्पर्श किया है।

४०८. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है?

उ०—लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। और विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात तथा वैक्रियिक समुद्घातगत सासादन सम्यग्दृष्टि

४०७—षट्खण्डागम, पु० ४, पृ० २६।

जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है। और मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टी जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बारह भाग प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है। जो इस प्रकार है—सुमेरु पर्वतके मूल भागसे लेकर ऊपर ईषत्प्राग्भार पृथिवी तक सात राजु होते हैं और नीचे छठी पृथिवी तक पाँच राजु होते हैं। उन दोनोंको मिला देनेसे सासादन सम्यग्दृष्टी जीवोंके मारणान्तिक क्षेत्रकी लम्बाई कुछ कम बारह राजु होती है।

४०९. प्र०—विहारवत्स्वस्थान वगैरहसे क्या अभिप्राय है?

उ०—स्वस्थान, समुद्घात और उपपादके भेदसे सब जीवोंकी अवस्था तीन प्रकारकी होती है। उनमें स्वस्थानके दो प्रकार हैं—एक स्वस्थानस्वस्थान और दूसरा विहारवत्स्वस्थान। अपने उत्पन्न होनेके ग्राम आदिमें सोना, उठना-बैठना वगैरह स्वस्थानस्वस्थान है और अपने उत्पत्ति स्थानको छोड़कर अन्यत्र आना-जाना आदि विहारवत्स्वस्थान है। सात समुद्घातोंका स्वरूप पहले बतलाया है। मरकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें उपपाद होता है। इन अवस्थाओंके द्वारा जीवने जितने क्षेत्रमें गमनागमन वगैरह किया हो उतना उसका स्पर्श होता है।

४१०. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टी और असंयत सम्यग्दृष्टी जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है?

उ०—स्वस्थानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भाग स्पर्श किया है। और विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किया है क्योंकि मेरु [illegible] ऊपर छै राजु और नीचे दो राजु प्रमाण है। तथा उपपादकी अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टी जीवोंने कुछ कम छै बटे चौदह राजु भाग स्पर्श किया है क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टी जीवोंका उपपाद क्षेत्र इससे नीचे नहीं है।

४११. प्र०—संयतासंयत जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है?

उ०—लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्र स्पर्श किया है और मारणान्तिक समुद्घात अवस्थामें कुछ कम छै बटे चौदह राजु क्षेत्र स्पर्श किया है।

४१२. प्र०—प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है?

उ०—लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया है। किन्तु सयोगकेवलीने लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है।

४१३. प्र०—मिथ्यादृष्टी जीव कितने काल तक होते हैं?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टी सदा रहते हैं। एक जीवकी अपेक्षा तीन प्रकार हैं—अनादि अनन्त, अनादि सान्त और सादि सान्त। अभव्य मिथ्यादृष्टीका काल अनादि अनन्त है क्योंकि अभव्यके मिथ्यात्वका आदि और अन्त नहीं होता। भव्य जीवके मिथ्यात्वका काल अनादि सान्त भी होता है और सादि सान्त भी होता है। सादि सान्त मिथ्यात्वका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टी, अथवा असंयत सम्यग्दृष्टी, अथवा संयतासंयत अथवा प्रमत्तसंयत जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्वमें रहकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको या असंयत सम्यक्त्वको या संयमासंयमको अथवा अप्रमत्त संयमको प्राप्त कर सकता है। तथा एक जीवकी अपेक्षा सादि सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है। क्योंकि एक बार सम्यक्त्व होकर छूट जाने पर भी जीव अधिकसे अधिक कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन कालतक ही संसारमें ठहरता है।

४१४. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टी जीव कितने काल तक होते हैं?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय तक होते हैं। और उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग कालतक होते हैं। खुलासा इस प्रकार है—पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र उपशम सम्यग्दृष्टी जीव उपशम सम्यक्त्वके कालमें एक समय मात्र शेष रहने पर एक साथ सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए और एक समय तक सासादन सम्यग्दृष्टी रहकर दूसरे समयमें सबके सब मिथ्यात्वमें चले गये। उस समय तीनों लोकोंमें कोई भी सासादन सम्यग्दृष्टी नहीं रहा। इस तरह नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समय प्राप्त हुआ। पल्योपमके असंख्यातवें भाग उपशम सम्यग्दृष्टी जीव उपशम सम्यक्त्वके कालमें एक समयसे लेकर छै आवली अवशिष्ट रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। वे जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होते तब तक अन्य भी उपशम सम्यग्दृष्टी सासादन गुणस्थानको प्राप्त होते रहते हैं। इस तरह उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल तक सासादन गुणस्थान पाया जाता है। और एक जीवकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल छै आवली है; क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके कालमें कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छै आवली काल शेष रहने पर उपशम सम्यग्दृष्टी जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है। और जितना उपशम सम्यक्त्वका काल शेष रहता है उतना ही सासादन गुणस्थानका काल होता है।

४१५. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीव कितने काल तक होते हैं?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल तक होते हैं। खुलासा इस प्रकार है—

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि अथवा वेदक सम्यक्त्व सहित असंयत सम्यग्दृष्टी [illegible] तथा प्रमत्तसंयत गुणस्थान वाले जीव परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुए और वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर मिथ्यात्वको अथवा असंयत सम्यग्दृष्टिको प्राप्त हो गये। तब सम्यक् मिथ्यात्व नष्ट हो गया। इस प्रकार उसका [illegible] अन्तर्मुहूर्त सिद्ध हुआ। इसी तरह पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए और वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक रहे। [illegible] भी पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यक् [illegible] पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र [illegible] बने रहते हैं। उसके पश्चात् नियमसे [illegible] ऐसा सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीवका जघन्य और [illegible] पल्यके उत्कृष्ट काल [illegible] है [illegible] गुणस्थानमें नहीं ठहर सकता।

४१६ प्र०—असंयत सम्यग्दृष्टी जीव कितने काल तक होते हैं [illegible]

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा [illegible] एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल [illegible] सागर है। जो इस प्रकार है—[illegible] धारा जीव मर कर [illegible] देवोंमें उत्पन्न हुआ। [illegible] हुआ। वहाँ अन्तर्मुहूर्त [illegible] इसके पश्चात् [illegible] कम पूर्व कोटि अधिक [illegible] होता है।

४१७ प्र०—[illegible]
की आयु [illegible] है [illegible]

उ०—[illegible] उत्पन्न हुआ। [illegible] होगा। और [illegible] मनुष्योंमें उत्पन्न [illegible] रहकर फिर [illegible]

४१८ प्र०—[illegible]

४२४. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग है। अर्थात् कभी कम एक समय और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक सासादन गुणस्थानमें कोई भी जीव नहीं पाया जाता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग है; क्योंकि उपशम सम्यक्त्वसे गिरने पर ही सासादन सम्यक्त्व होता है और एक बार उपशम सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें आजाने पर पुनः पल्योपम के असंख्यातवें भाग काल बीतने पर ही उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है; क्योंकि एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्त संसारको अर्ध पुद्गल परावर्तनमात्र किया पुनः अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्दृष्टि रहकर वह सासादनसम्यक्त्वी हो गया। वहांसे मिथ्यात्वमें चला गया और अर्धपुद्गल परावर्तन कालतक मिथ्यात्वमें रहकर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस तरह उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना।

४२५. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यका असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है। इसका उपपादन सासादन सम्यग्दृष्टिके अन्तरकालको दृष्टिमें रखकर कर लेना चाहिए।

४२६. प्र० – असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है; क्योंकि उक्त गुणस्थानोंमें सदा ही जीव पाये जाते हैं। एक जीवकी अपेक्षा उक्त गुणस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। वह इस प्रकार है एक असंयत सम्यग्दृष्टि संयमासंयमको प्राप्त हुआ और एक अन्तर्मुहूर्त तक संयमासंयमी रहकर पुनः असंयत सम्यग्दृष्टी हो गया। एक संयतासंयत मिथ्यादृष्टि हो गया या असंयत सम्यग्दृष्टी अथवा संयमी हो गया और एक अन्तर्मुहूर्त तक वहाँ रहकर पुनः संयतासंयत हो गया। इसी तरह एक प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत हो गया। और एक अप्रमत्तसंयत उपशम श्रेणीपर चढ़कर पुनः लौटा और अप्रमत्त संयत हो गया। इसी तरह प्रत्येक उक्त गुणस्थानका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त

४२५—षट्खण्डाम, पु० ५, पृ० १४–१५।

होता है। तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है। जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको सम्यक्त्व उत्पन्न कराकर उस गुणस्थानमें भेजना चाहिये और वहाँसे च्युत कराकर पुनः मिथ्यात्वमें लाकर कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन काल तक भ्रमण कराकर, पुनः सम्यक्त्व उत्पन्न कराकर उस गुणस्थानमें ले आना चाहिये। इस तरह करनेसे उत्कृष्ट अन्तरकाल निकलता है।

४२७ प्र०—उपशम श्रेणीके चारों गुणस्थानोंका अन्तरकाल कितना है?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है। जो इस प्रकार है—बहुतसे जीव अपूर्वकरण गुणस्थानमें गये और उनका काल समाप्त होनेपर कुछ ऊपर चढ़ गये, कुछ नीचे गिर गये और एक समय तक अपूर्वकरणमें कोई भी नहीं रहा। उसके बाद दूसरे समयमें सातवेंसे चढ़कर और नौवेंसे गिरकर अनेक जीव अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती हो गये। इस प्रकार एक समय जघन्य अन्तर हुआ इसी तरह शेष तीन गुणस्थानोंका भी अन्तर जानना चाहिये। उपशम श्रेणीके चारों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल [illegible] है। क्योंकि अधिकसे अधिक वर्ष पृथक्त्व तक कोई जीव उपशामक श्रेणीके [illegible] स्थानमें नहीं रह सकता। [illegible] अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि एक अपूर्वकरण [illegible] चढ़कर और वहाँसे गिरकर पुनः अपूर्वकरण [illegible] अन्तर्मुहूर्तकाल जघन्य अन्तर हुआ [illegible] करण उपशामक होनेसे पूर्व [illegible] और नीचे गुणस्थानमें आना [illegible] करनेपर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है। [illegible] एक जीवकी अपेक्षा [illegible] एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गल [illegible] अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको [illegible] उपशम श्रेणीमें [illegible] गिरकर मिथ्यात्वमें आकर कुछ कम [illegible] करके पुनः [illegible] करनेसे उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल [illegible] है।

४२८ प्र०—चारों क्षपक और अयोगकेवली गुणस्थानोंका अन्तरकाल कितना है?

उ०—नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर [illegible] है। क्योंकि अधिकसे अधिक [illegible] क्षपक श्रेणी [illegible]

समयमें सबके सब अनिवृत्तिकरण क्षपक हो गये। और एक समय के लिए एक भी जीव अपूर्वकरण क्षपक नहीं रहा, दूसरे समयमें पुनः कुछ जीव अपूर्वकरण क्षपक हो गये। इस तरह जघन्य अन्तर एक समय होता है। इसी तरह एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपकोंमेंसे सबके सब एक साथ अनिवृत्तिकरण क्षपक हो गये और छै मास तक कोई भी जीव क्षपक अपूर्वकरण नहीं हुआ। अतः उत्कृष्ट अन्तर छै मास होता है। इसी तरह शेष गुणस्थानोंका भी जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर जान लेना। एक जीवकी अपेक्षा उक्त चारों क्षपकोंका और अयोगकेवली गुणस्थानका अन्तर नहीं है क्योंकि क्षपक श्रेणीवाले जीवोंका पतन नहीं होता।

४२९. प्र०—सयोगकेवली गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है?

उ०—नाना जीवों तथा एक जीवोंकी अपेक्षा भी सयोगकेवली गुणस्थानका अन्तर नहीं है; क्योंकि सयोग केवलियोंका कभी अभाव नहीं होता। तथा सयोग-केवलीसे अयोगकेवली हुए जीव पुनः सयोगकेवली नहीं होते।

४३०. प्र०—मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कौन-सा भाव है?

उ०—मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण मिथ्यादृष्टि गुणस्थान औदयिक भाव है। क्योंकि जो उदयसे हो उसे औदयिक कहते हैं।

४३१. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टि कौन-सा भाव है?

उ०—आदिके चार गुणस्थानोंमें जो भाव बतलाये गये हैं वह दर्शन मोहनीय की अपेक्षासे बतलाये गये हैं। इसलिये दर्शन मोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमसे न होनेके कारण सासादन सम्यक्त्व पारिणामिक भाव है। क्योंकि जो भाव किसी कर्मोके उदय, उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमसे नहीं होता उसे पारिणामिक कहते हैं।

४३२. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टि कौन-सा भाव है?

उ०—सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय होनेपर श्रद्धान-अश्रद्धान रूप जो मिला हुआ जीव भाव होता है उसमें जो श्रद्धानका अंश है वह सम्यक्त्वका हिस्सा है, उसे सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय नष्ट नहीं करता। इसलिये सम्यग्मिथ्यात्व भाव क्षायोपशमिक है।

४३३. प्र०—असंयत सम्यग्दृष्टि कौन-सा भाव है?

उ०—दर्शन मोहनीयकी उपशमसे उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है इसलिये असंयत सम्यग्दृष्टि औपशमिक भाव है। दर्शन मोहनीयके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है, इसलिये असंयत सम्यग्दृष्टि क्षायिक भाव है। सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्द्धकोंके उदयके साथ रहनेवाला सम्यक्त्व क्षायोपशमिक कहलाता

है। इसलिये असंयत सम्यग्दृष्टी क्षायोपशमिक भाव है। इस तरह असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें तीन भाव होते हैं।

४३४. प्र०—संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत कौन-सा भाव है?

उ०—चारित्र मोहनीय कर्मके उदयका क्षयोपशम होनेपर संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत भाव उत्पन्न होते है इसलिये ये तीनों भाव क्षायोपशमिक हैं।

४३५. प्र०—अपूर्वकरण आदि चारों उपशम गुणस्थान कौन-सा भाव है?

उ०—इनमें चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंका उपशम होता है इसलिये चारों गुणस्थान औपशमिक भावरूप हैं।

४३६. प्र०—चारों क्षपक, सयोगकेवली और अयोगकेवली कौन-सा भाव है?

उ०—कर्मोंके क्षय करनेके कारण और कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेके कारण ये क्षपक वगैरह क्षायिक भावरूप है।

४३७. प्र०—कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जो पुद्गल स्कन्ध जीवके राग द्वेष आदि परिणामोंके निमित्तसे कर्म रूपसे परिणत होकर जीवके साथ बन्धको प्राप्त होता है उसको कर्म कहते है।

४३८. प्र०—कर्मके कितने भेद हैं?

उ०—आठ भेद है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

४३९. प्र०—ज्ञानावरण कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जो जीवके ज्ञान गुणको ढांकता है उसको ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

४४०. प्र०—दर्शनावरण कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जो जीवके दर्शन गुणको ढांकता है उसको दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

४४१. प्र०—वेदनीय कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जो जीवके सुख और दुःखका अनुभवन कराता है उसको वेदनीय कर्म कहते हैं।

४४२. प्र०—मोहनीय कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जो जीवको मोहित करता है वह मोहनीय कर्म है।

४४३. प्र०—आयु कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जिसके निमित्तसे जीव नरक आदि भवोंमें जाता है तथा उनमें अमुक समय तक रुका रहता है वह आयु कर्म है।

४८४. प्र०—नाम कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो शरीर आकार आदि नाना प्रकारकी रचना करता है वह नाम कर्म है।

४८५. प्र०—गोत्र कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जीवको उच्च अथवा नीच कुलमें उत्पन्न करता है वह गोत्र कर्म कहा जाता है।

४८६. प्र०—अन्तराय कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो दान, लाभ, भोग, उपभोग आदिमें विघ्न करनेमें समर्थ है उसको अन्तराय कर्म कहते हैं।

४४७. प्र०—ज्ञानावरण कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—पांच भेद हैं—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण।

४४८. प्र०—दर्शनावरण कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—नौ भेद हैं—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला और चक्षुदर्शनावरण, अचक्षु दर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण।

४४९. प्र०—निद्रानिद्रा किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे जीव वृक्षकी चोटी पर भी गाढ़ निद्रामें सोता है उसे निद्रानिद्रा कहते हैं।

४५०. प्र०—प्रचलाप्रचला किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे जीव बैठा या खड़ा-खड़ा सो जाता है, सोते हुए मुँहसे लार गिरती है, शरीर काँपता है उसे प्रचलाप्रचला कहते हैं।

४५१. प्र०—स्त्यानगृद्धि किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे उठाये जाने पर भी प्राणी पुनः सो जाता है, सोते हुए भी कार्य कर डालता है, बड़बड़ाता है और दाँत किटकिटाता है उसे स्त्यानगृद्धि कहते हैं।

४५२. प्र०—निद्रा किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे जीव थोड़ा सोता है, उठाये जाने पर जल्दी उठ

बैठता है, और थोड़ा-सा भी शब्द होनेसे जल्दी सचेत हो जाता है उसे निद्रा कहते हैं।

१५३. प्र०—प्रचला किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे आँखें ऐसी रहती हैं, मानो उनमें रेत भरा है, सिर भारी रहता है और नेत्र बार-बार बन्द होते और खुलते हैं उसे प्रचला कहते हैं।

१५४. प्र०—वेदनीय कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—साता वेदनीय और असाता वेदनीय।

१५५. प्र०—मोहनीय कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।

१५६ प्र०—दर्शन मोहनीय किसको कहते हैं ?

उ०—देव, शास्त्र और गुरुमें रुचि अथवा श्रद्धा होनेको दर्शन या सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसको जो [illegible] अर्थात् [illegible] उसको दर्शन मोहनीय कर्म कहते हैं [illegible] देव दृष्टि कुशास्त्रमें शास्त्र दृष्टि और [illegible] शास्त्रमें अधिक श्रद्धान [illegible] दोनोंमें श्रद्धा होता है वह दर्शन [illegible] है।

१५७ प्र०—दर्शन मोहनीयके कितने भेद हैं ?

उ०—उसकी आत्मा [illegible] अधिक [illegible] और कर्मोंके [illegible] आते हैं [illegible] द्वारा [illegible]

१५८ प्र०—[illegible] प्रकृति किसको कहते हैं

उ०—[illegible] वह [illegible] प्रकृति है।

१५९. प्र०—[illegible] किसको कहते हैं

उ०—[illegible] कहते हैं।

१६० प्र०—[illegible] किसको कहते हैं

उ०—जिसके उदयसे एक साथ देव गुरु, कुशास्त्र और कुगुरुमें श्रद्धा होती है वह सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति है।

४६१. प्र०—मिथ्यात्व कर्म किसे कहते हैं?

उ०—जिस कर्मके उदयसे देव शास्त्र गुरुमें अश्रद्धा होती है वह मिथ्यात्व कर्म है।

४६२. प्र०—चारित्र मोहनीय कर्म किसको कहते हैं?

उ०—पापके कार्योंका त्यागकर देनेको चारित्र कहते हैं। उस चारित्रको जो मोहित करता है अर्थात् घातता है, उसे चारित्र मोहनीय कर्म कहते हैं।

४६३. प्र०—चारित्र मोहनीयके कितने भेद हैं?

उ०—दो भेद हैं—कषाय वेदनीय और नोकषाय वेदनीय। कषाय वेदनीयके सोलह भेद हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। तथा नोकषाय वेदनीयके नो भेद हैं—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा।

४६४. प्र०—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ किसको कहते हैं?

उ०—अनन्त भवोंको बांधना ही जिसका स्वभाव है ऐसे क्रोध मान माया लोभको अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ कहते हैं। सारांश यह है कि इन कषायोंका संस्कार अनन्त भवों तक माना गया है। ये चारों ही कषाय सम्यक्त्व और चारित्र दोनोंको घातती हैं।

४६५. प्र०—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ किसको कहते हैं?

उ०—अप्रत्याख्यान संयमासंयम या देश चारित्रको कहते हैं। उसको जो आवरण करता है उसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ कहते हैं?

४६६. प्र०—प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ किसको कहते हैं?

उ०—प्रत्याख्यान कहते हैं संयम अथवा महाव्रतको। उसको जो आवरण करते हैं वे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध मान माया लोभ कहलाते हैं।

४६७. प्र०—संज्वलन क्रोध मान माया लोभ किसको कहते हैं?

उ०—जो कषाय चारित्रका घात तो नहीं करती किन्तु यथाख्यात चारित्रको उत्पन्न नहीं होने देती उसको संज्वलन क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

४६८. प्र०—नोकषाय किसको कहते हैं?

उ०—ईषत् कषायको नोकषाय कहते हैं।

४६९. प्र०—नोकषायोंका क्या स्वरूप है ?

उ०—जिसके उदयसे पुरुषकी आकांक्षा उत्पन्न होती है उसको स्त्रीवेद कहते हैं। जिसके उदयसे स्त्रीके प्रति आकांक्षा उत्पन्न होती है उसको पुरुषवेद कहते हैं और जिसके उदयसे स्त्री और पुरुष दोनोंके प्रति आकांक्षा हो वह नपुंसकवेद है। जिसके उदयसे जीवमें हास्य निमित्तक राग उत्पन्न होता है उस कर्मस्कन्धको हास्य कहते हैं। जिसके उदयसे जीवमें राग भाव उत्पन्न होता है उसको रति कहते हैं। जिसके उदयसे जीवमें किसीके प्रति अरुचि उत्पन्न होती है उसको अरति कहते हैं। जिसके उदयसे जीवके शोक उत्पन्न होता है उसको शोक कहते हैं। जिसके उदयसे जीवके भय उत्पन्न होता है, उसको भय कहते हैं। जिसके उदयसे ग्लानि उत्पन्न होती है उसको जुगुप्सा कहते हैं। ये सब नोकषाय हैं।

४७०. प्र०—आयु कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—चार भेद हैं—नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु। जिसके उदयसे जीवको नारक भवमें ठहरना पड़े उसे नरकायु कहते हैं। जिसके उदयसे जीवको तिर्यञ्च भवमें ठहरना पड़े उसे तिर्यञ्चायु कहते हैं। इसी प्रकार मनुष्यायु और देवायुका स्वरूप जानना।

४७१. प्र०—नाम कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—तिरानवे—चार गतिनाम (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव), पांच जाति नाम (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय), पांच शरीर नाम (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण), पांच शरीर बन्धन नाम (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण), पांच शरीर संघात नाम (औदारिक, वैक्रियिक शरीर) ऐसे [illegible] छह संस्थान (समचतुरस्र शरीर संस्थान, न्यग्रोध परिमण्डल शरीर संस्थान, स्वाति शरीर संस्थान, कुब्जक शरीर संस्थान, वामन शरीर संस्थान, हुण्डक शरीर संस्थान), तीन अंगोपांग नाम (औदारिक शरीर अंगोपांग नाम, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग नाम, आहारक शरीर अंगोपांग नाम), छह संहनन नाम (वज्रर्षभनाराच शरीर संहनन, वज्र नाराच शरीर संहनन, नाराच शरीर संहनन, अर्धनाराच शरीर संहनन, कीलक शरीर संहनन और असंप्राप्तासृपाटिका शरीर संहनन), पांच वर्णनाम (कृष्ण, नील, रुधिर, पीत, शुक्ल), दो गन्ध नाम (सुगन्ध, दुर्गन्ध), पांच रस नाम (तिक्त, कटुक, कषाय, आम्ल, मधुर), आठ स्पर्श नाम (कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण), चार आनुपूर्वी नाम (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव), एक अगुरुलघु नाम, एक उपघात नाम, एक परघात नाम, एक आतप नाम, एक उद्योत नाम

४८५. प्र०—शरीरमें अंग उपांग कौनसे हैं ?

उ०—शरीरमें दो पैर, दो हाथ, एक नितम्ब, पीठ, हृदय और मस्तक ये आठ अंग होते हैं। इनके सिवाय अन्य उपांग होते हैं—जैसे ललाट, भौं, कान, नाक, आंख, तालु, जीभ वगैरह।

४८६. प्र०—संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे शरीरमें हाड़ और उनकी सन्धियोंकी रचना हो ?

४८७. प्र०—वज्रऋषभ नाराच शरीर संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—हड्डियोंके संचयको संहनन और वेष्टनको ऋषभ कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे वज्रमय हड्डियां वज्रमय वेष्टनसे वेष्टित और वज्रमय नाराचसे कीलित होती हैं।

४८८. प्र०—वज्रनाराच संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे पूर्वोक्त अस्थिबन्धन ही वज्रमय वेष्टनसे रहित हो।

४८९. प्र०—नाराच संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे नाराच अर्थात् कीलें सहित हाड़ हों किन्तु वज्रमय न हों।

४९०. प्र०—अर्धनाराच संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे हाड़ोंकी सन्धियां नाराचसे आधी विंधी हुई हों।

४९१. प्र०—कीलक संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे हड्डियाँ परस्परमें कीलित हों वह कीलक संहनन नामकर्म है।

४९२. प्र०—असंप्राप्तासृपाटिका संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जुदे-जुदे हाड़ शिराओंसे बँधे हुए हों।

४९३. प्र०—वर्ण नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें अपनी जातिके अनुसार नियत काले-पीले आदि वर्णकी उत्पत्ति हो।

४९४. प्र०—गन्ध नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें अपनी जातिके अनुसार नियत गन्ध उत्पन्न होती है।

९५. प्र०—रस नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें अपनी जातिके अनुसार नियत तिक्त आदि रस उत्पन्न हो।

४९६. प्र०—स्पर्श नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें अपनी जातिके अनुसार नियत स्पर्श उत्पन्न होता है।

४९७. प्र०—आनुपूर्वी नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जन्मसे पहले और मरणके पीछे बीचमें एक दो और तीन समयमें अर्थात् विग्रह गतिमें वर्तमान जीवके प्रदेशोंका आकार मरणसे पहलेके शरीरके आकार होता है।

४९८. प्र०—संस्थान नामकर्म और आनुपूर्वी नामकर्ममें क्या अन्तर है ?

उ०—संस्थान नामकर्मका उदय शरीर ग्रहणके प्रथम समयसे होता है और आनुपूर्वीका उदय विग्रह गतिमें होता है। आनुपूर्वीके उदयसे ही जीव इच्छित गतिमें जाता है। विग्रह गतिमें आकार विशेष बनाये रखना और इच्छित गतिमें गमन कराना ये दोनों ही आनुपूर्वीके कार्य हैं।

४९९. प्र०—अगुरुलघु नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर न तो लोहेके गोलेके समान भारी और न आककी रूईकी तरह हल्का हो।

५००. प्र०—उपघात नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवको पीड़ा देनेवाले अवयव हों जैसे बारह-सींगेके सींग।

५०१. प्र०—परघात नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे दूसरेका घात करनेवाले अवयव हों। जैसे सर्पकी दाढ़में विष, बिच्छूके डंक, सिंहके नख दांत आदि।

५०२. प्र०—उच्छ्वास नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव उच्छ्वास और निःश्वास लेनेमें समर्थ होता है।

५०३. प्र०—आतप नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें आतप होता है। जैसे पृथिवीकायिक जीवोंके शरीर रूप सूर्य मण्डलमें आताप देखा जाता है।

४९८—षट्खण्डागम, पु० ६, पृ० ५६-५७।

५०४. प्र०—उद्योत नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमें उद्योत प्रकाश होता है। जैसे चन्द्र, खद्योत वगैरहके शरीरमें उद्योत पाया जाता है।

५०५. प्र०—विहायोगति नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—विहायस् नाम आकाशका है। जिस कर्मके उदयसे जीवका आकाशमें गमन हो उसको विहायोगति नामकर्म कहते हैं।

५०६. प्र०—तिर्यञ्च और मनुष्योंका भूमिपर गमन किस कर्मके उदयसे होता है ?

उ०—विहायोगति नामकर्मके उदयसे।

५०७. प्र०—त्रस नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे दोइन्द्रिय आदि पर्याय हो।

५०८. प्र०—स्थावर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव स्थावर पर्यायको प्राप्त हो।

५०९. प्र०—बादर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव बादरकाय वालोंमें उत्पन्न हो।

५१०. प्र०—सूक्ष्म नाककर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव सूक्ष्मताको प्राप्त हो।

५११. प्र०—पर्याप्त नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्त होता है।

५१२. प्र०—अपर्याप्त नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्तियोंको समाप्त करनेमें समर्थ नहीं होता।

५१३. प्र०—प्रत्येक शरीर नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव प्रत्येक शरीर होता है, अर्थात् एक शरीरमें एक ही जीव पाया जाता है।

५१४. प्र०—साधारण शरीर नाम कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव साधारण शरीर वाला होता है।

५१५. प्र०—स्थिर नाम कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे रस, रुधिर, आदि धातुएँ स्थिर हों, उनका विनाश न हो।

११६. प्र०—अस्थिर नाम कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे रस रुधिर आदि धातुएँ अस्थिर हों।

११७. प्र०—शुभ नाम कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे अंग और उपांग रमणीय होते हैं।

११८. प्र०—अशुभ नाम कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे अंग और उपांग सुन्दर न हों।

११९. प्र०—सुभग नाम कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—सौभाग्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मको [illegible]

१२०. प्र०—दुर्भग नाम कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—दुर्भाग्य को उत्पन्न करनेवाले कर्मको [illegible]

वर्ष है। दूसरे आदि निषेकोंकी स्थिति क्रमसे एक-एक समय बढ़ी-बढ़ी अन्तिम निषेककी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर होती है।

५५१. प्र०—आवाधाकाल किसे कहते हैं ?

उ०—कर्मका बन्ध होनेके पश्चात् जबतक वह कर्म उदय अथवा उदीरणा अवस्थाको प्राप्त नहीं होता, उतने कालको आवाधाकाल कहते हैं।

५५२ प्र०—आवाधाकालका क्या नियम है ?

उ०—उदयकी अपेक्षा आयुकर्मके सिवाय शेष सात कर्मोंकी आवाधा एक कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिमें सौ वर्ष प्रमाण होती है। अतः जिस कर्मकी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बँधती है, उसका आवाधाकाल सात हजार वर्ष है। जिस कर्मकी स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है उसकी आवाधा चार हजार वर्ष है। जिसकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है उसका आवाधाकाल तीन हजार वर्ष है। इसी तरह सब कर्मोंकी स्थितिमें आवाधाकाल जानना। जिस कर्मकी स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है उसका आवाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है।

५५३. प्र०—आयु कर्मकी आवाधाका क्या नियम है ?

उ०—आयु कर्मकी आवाधा अन्य कर्मोंकी तरह स्थितिबन्धके अनुसार नहीं होती। इसीसे आयुके स्थितिबन्धमें आवाधाकाल नहीं गिना जाता; क्योंकि आयुका आवाधाकाल पूर्व पर्यायमें ही बीत जाता है। अतः आयु कर्मके प्रथम निषेककी स्थिति एक समय, दूसरे निषेककी दो समय, इस तरह क्रमसे बढ़ते-बढ़ते अन्तिम निषेककी स्थिति सम्पूर्ण स्थितिबन्ध प्रमाण होती है।

५५४. प्र०—आयु कर्मका आवाधाकाल कितना है ?

उ०—आयु कर्मका बन्ध अन्य कर्मोंकी तरह सदा नहीं होता। देव और नारकियोंके छै महीने आयु शेष रहने पर और भोगभूमिया जीवोंके नौ महीना आयु शेष रहने पर उसके त्रिभागमें आयु कर्मका बन्ध होता है। कर्मभूमिया मनुष्य तिर्यञ्चोंके अपनी सम्पूर्ण आयुके त्रिभागमें आयु कर्मका बन्ध होता है। सो कर्मभूमिया जीवकी उत्कृष्ट आयु एक कोटी पूर्व होती है अतः एक कोटी पूर्वका त्रिभाग आयु कर्मका उत्कृष्ट आवाधाकाल है। त्रिभागके द्वारा आठ अपकर्ष कालोंमें आयुकर्मका बन्ध होता है। किन्तु यदि किसी भी अपकर्ष कालमें आयु नहीं बँधती तो किन्हीं आचार्यके मतसे एक आवलीके असंख्यातवें भाग और किन्हीं आचार्यके मतसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुके अवशेष रहने पर उत्तर भवकी आयुका बन्ध होता है। अतः आयु कर्मका जघन्य आवाधाकाल अन्तर्मुहूर्त अथवा आवलीका असंख्यातवाँ भाग होता है।

५५५. प्र०—अपकर्षकाल किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान आयुको अपकृष्य अर्थात् घटा-घटाकर आगामी परभवकी आयु जिस कालमें बंधे उसे अपकर्ष काल कहते हैं। जैसे, किसी कर्मभूमिया मनुष्यकी आयु इक्यासी वर्ष है। उस आयुके दो भाग बीतने पर जब सत्ताईस वर्षकी आयु शेष रहती है तो तीसरे भागके लगते ही प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त प्रथम अपकर्ष काल होता है उसमें परभवकी आयुका बन्ध होता है। यदि न बँधे तो उसके भी दो भाग बीतने पर जब नौ वर्षकी आयु शेष रहती है तब अन्तर्मुहूर्तके लिये दूसरा अपकर्षकाल आता है। उसमें भी आयु न बंधे तो तीन वर्षकी आयु शेष रहने पर तीसरे अपकर्ष कालमें आयु बँधती है। उसमें भी न बँधे तो एक वर्ष आयु शेष रहने पर चौथे अपकर्ष कालमें आयु बँधती है। इस तरह भुज्यमान आयुका जितना प्रमाण हो उसके त्रिभाग त्रिभागमें आठ अपकर्षकाल होते हैं। आयुबंधके योग्य परिणाम इन अपकर्ष कालोंमें ही होते हैं। किन्तु ऐसा कोई नियम नहीं है कि इन अपकर्षोंमें आयुका बंध होना ही चाहिये। बन्ध होना हो तो होता है, न होना हो तो नहीं होता।

५५६. प्र०—निषेक किसको कहते हैं ?

उ०—एक समयमें जितने कर्मपरमाणु उदयमें आयें उनके समूहको निषेक कहते हैं।

५५७ प्र०—अनुभागबन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—जैसे भाजन वगैरहके निमित्तसे पुष्प वगैरह मदिरा रूप हो जाते हैं, उनमें ऐसी शक्ति हो जाती है कि उनके पीनेसे पुरुषको थोड़ा या बहुत नशा हो जाता है। वैसे ही रागादिके निमित्तसे जो पुद्गल कर्मरूप होते हैं उनमें ऐसी शक्ति होती है जिससे उदयकाल आनेपर वे जीवके ज्ञानादि गुणोंका थोड़ा या बहुत घात करते हैं। बन्ध होते समय कर्ममें ऐसी शक्तिके पड़नेका नाम ही अनुभागबंध है।

५५८ प्र०—अविभागी प्रतिच्छेद किसको कहते हैं ?

उ०—शक्तिके अविभागी अंशको अविभागी प्रतिच्छेद कहते हैं।

५५९. प्र०—वर्ग किसको कहते हैं ?

उ०—अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं। चूँकि प्रत्येक परमाणुमें अनेक अविभागी प्रतिच्छेद होते हैं इसलिये प्रत्येक परमाणु एक वर्ग है।

५६०. प्र०—जघन्य वर्ग किसको कहते हैं ?

उ०—थोड़े अनुभाग वाले परमाणुको जघन्य वर्ग कहते हैं।

५६१. प्र०—वर्गणा किसको कहते हैं ?

उ०—समान अविभागी प्रतिच्छेदोंसे युक्त वर्गोंके समूहको वर्गणा कहते हैं।

५६२. प्र०—जघन्य वर्गणा किसको कहते हैं ?

उ०—जघन्य वर्गोंके समूहको जघन्य वर्गणा कहते हैं।

५६३. प्र०—द्वितीय वर्गणा किसको कहते हैं ?

उ०—जघन्य वर्गसे एक अधिक अविभागी प्रतिच्छेदोंसे युक्त वर्गोंके समूहको द्वितीय वर्गणा कहते हैं।

५६४. प्र०—स्पर्द्धक किसको कहते हैं ?

उ०—उक्त प्रकारसे एक-एक अविभागी प्रतिच्छेद अधिक वर्गोंके समूहरूप वर्गणा जहाँ तक उपलब्ध हों, उन सब वर्गणाओंके समूहको स्पर्द्धक कहते हैं।

५६५. प्र०—द्वितीय स्पर्द्धक किसको कहते हैं ?

उ०—प्रथम स्पर्द्धकके ऊपर क्रमसे एक-एक अविभागी प्रतिच्छेद अधिकवाले वर्गोंके समूह वर्गणा जब तक उपलब्ध हों, उन सब वर्गणाओंके समूहको द्वितीय स्पर्द्धक कहते हैं।

५६६. प्र०—गुणहानि किसको कहते हैं ?

उ०—स्पर्द्धकोंके समूहको गुणहानि कहते हैं।

५६७ प्र०—गुणहानि आयाम किसको कहते हैं ?

उ०—एक गुणहानिके समयोंके समूहको गुणहानि आयाम कहते हैं।

५६८. प्र०—नाना गुणहानि किसको कहते हैं ?

उ०—गुणहानिके प्रमाणको नाना गुणहानि कहते हैं।

५६९. प्र०—अन्योन्याभ्यस्तराशि किसको कहते हैं ?

उ०—नाना गुणहानि प्रमाण दुए रखकर उन्हें परस्परमें गुणनेसे जो प्रमाण होता है उसे अन्योन्याभ्यस्तराशि कहते हैं।

५७०. प्र०—स्थिति रचनाकी अपेक्षा निषेकोंमें द्रव्यका प्रमाण लानेकी विधि क्या है ?

उ०—जैसे, किसी जीवने एक समयमें तिरसठ सौ परमाणुओंके समूहरूप समयप्रबद्धका बंध किया और उसमें ४८ समयकी स्थिति पड़ी। गुणहानि ८, नानागुणहानि ६, अन्योन्याभ्यस्तराशि ६४ स्थापन करके सर्व द्रव्यको साधिक डेढ़ गुणहानिका भाग देने पर प्रथम निषेकका द्रव्य आता है। जैसे, तिरसठ सौ को

साधिक बारहवां भाग देनेसे ५१२ आते हैं। प्रथम निषेकको दो गुणहानिका भाग देनेसे चयका प्रमाण आता है। जैसे ५१२ को १६ का भाग देनेसे ३२ आता है यह चय है। सो द्वितीय आदि निषेकोंका द्रव्य एक-एक चय घटता जानना। जैसे ५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २८८। इस तरह घटते घटते जिस निषेकमें प्रथम निषेकसे आधा द्रव्य पाया जाये वहांसे दूसरी गुणहानि प्रारम्भ होती है। जैसे दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेकका द्रव्य २५६ है। यहां चय का प्रमाण प्रथम गुणहानिसे आधा है अर्थात् १६ है। सो यहां भी द्वितीय आदि निषेकोंका द्रव्य क्रमसे एक-एक चय घटता हुआ जानना। जैसे, २५६, २४०, २२४, २०८, १९२, १७६, १६०, १४४। इस प्रकार प्रथम गुणहानिसे द्वितीय गुणहानिका द्रव्य और चयका प्रमाण जैसे आधा होता है वैसे ही [illegible] आदि गुणहानियोंमें अपनेसे पूर्व पूर्वकी गुणहानियोंसे द्रव्य और चयका क्रमसे आधा आधा होता जाता है। इस तरह नाना गुणहानि [illegible] हानियोंमें निषेकोंके द्रव्यका प्रमाण लाना चाहिये। जैसे तीसरी गुणहानिमें १२८, १२०, ११२, १०४, ९६, ८८, ८०, ७२। चौथी गुणहानिमें ६४, ६०, ५६, ५२, ४८, ४४, ४०, ३६। पांचवीमें ३२, ३०, २८, २६, २४, २२, २०, १८। [illegible] १६, १५, १४, १३, १२, ११, १०, ९।

५७१. प्र०—सत्त्व अथवा सत्ता किसको कहते हैं?

उ०—अनेक समयोंमें बंधे हुए कर्मों का विवक्षित काल [illegible] होनेका नाम सत्त्व है।

५७२. प्र०—सत्त्वके कितने भेद हैं?

उ०—सत्त्व भी चार प्रकारका है—प्रकृति सत्त्व, प्रदेश सत्त्व, [illegible] और अनुभाग सत्त्व।

५७३. प्र०—प्रकृति सत्त्व किसको कहते हैं?

उ०—अनेक [illegible] [illegible] प्रकृतिके अस्तित्वको प्रकृति सत्त्व कहते हैं।

५७४. प्र०—प्रदेश सत्त्व किसको कहते हैं?

उ०—उन प्रकृति [illegible] कहते हैं।

५७५. प्र०—एक जीवके अधिकसे अधिक कितना प्रदेश सत्त्व [illegible] है?

उ०—प्रत्येक संसारी जीव एक-एक समयमें एक-एक [illegible] करता है और इस [illegible] [illegible]

५८९. प्र०— संक्रमणके लिए उपयोगी पांच भागहार कौनसे हैं ?

उ०—उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुण संक्रमण, सर्व संक्रमण, ये पांच भागहार हैं।

५९०. प्र०—उद्वेलन संक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—अधःप्रवृत्त आदि तीन करणोंके बिना ही उद्वेलन प्रकृतिके परमाणुओं-में उद्वेलन भागहारका भाग देने पर एक भाग मात्र परमाणु जहाँ अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते हैं उसे उद्वेलन संक्रमण कहते हैं।

५९१. प्र०—उद्वेलन प्रकृतियां कौन सी हैं ?

उ०—आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र प्रकृति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, उच्च गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये तेरह उद्वेलन प्रकृतियां हैं।

५९२. प्र०—उद्वेलन प्रकृतियोंकी उद्वेलना कौन करता है ?

उ०—शुरुकी चार प्रकृतियोंकी उद्वेलना तो चारों गतियोंके मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं। फिर छै प्रकृतियोंकी उद्वेलना एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव करते हैं। शेष तीन प्रकृतियोंकी उद्वेलना तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव करते हैं।

५९३. प्र०—विध्यात संक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—मन्द विशुद्धि वाले जीवके जिनका बन्ध नहीं पाया जाता, उन विवक्षित प्रकृतियोंके परमाणुओंमें विध्यात भागहारका भाग देनेपर एक भाग मात्र परमाणु जहाँ अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते हैं उसे विध्यात संक्रमण कहते हैं।

५९४. प्र०—अधःप्रवृत्त संक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—बंधनेवाली प्रकृतियोंमें अधःप्रवृत्त भागहारका भाग देने पर एक भाग मात्र परमाणु जहाँ बंधको प्राप्त अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते हैं उसे अधःप्रवृत्त संक्रमण कहते हैं।

५९५. प्र०—गुण संक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—विवक्षित अशुभ प्रकृतियोंके परमाणुओंमें गुण संक्रमण भागहारका भाग देने पर जहाँ प्रति समय असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे परमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते हैं उसे गुण संक्रमण कहते हैं।

५९६. प्र०—सर्व संक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—प्रति समय विवक्षित प्रकृतिके परमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते करते जहाँ अन्त समयमें अन्तके काण्डककी अन्तिम फाली रूप सभी परमाणु अन्य प्रकृतिरूप परिणमन करते हैं उसे सर्व संक्रमण कहते हैं।

१९७ प्र०—भागहारोंका प्रमाण क्या है ?

उ०—सर्व संक्रमण भागहारका प्रमाण तो एक है। उससे असंख्यात गुणा गुण संक्रमण भागहारका प्रमाण है। उससे भी असंख्यात गुणा उत्कर्षण और अपकर्षण भागहारका प्रमाण है। उससे भी असंख्यातगुणा अधःप्रवृत्त संक्रम भागहारका प्रमाण है। उससे भी असंख्यातगुणा विध्यात संक्रम भागहारका प्रमाण है। और उससे भी असंख्यातगुणा उद्वेलन संक्रमण भागहारका प्रमाण है।

१९८. प्र०—उपशम करण किसको कहते हैं ?

उ०—विवक्षित प्रकृतिके जो निषेक उदयावलीसे बाहर हैं, उनके परमाणुओं[illegible] उदयावलीमें आनेके अयोग्य करनेका नाम उपशम अथवा उपशान्त[illegible] [illegible]रण है।

१९९. प्र०—उपशमके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—एक अन्तरकरण रूप उपशम और दूसरा सदवस्था रूप उपशम।

६००. प्र०—अन्तरकरण रूप उपशम किसको कहते हैं ?

उ०—अन्तरकरणका स्वरूप पहले कहा है [illegible] अन्तरकरणके द्वारा आगामी [illegible]में उदय आने योग्य कर्म परमाणुओंको आगे-पीछे उदय आने योग्य करके [illegible]म अन्तरकरण रूप उपशम है।

०१ प्र०—सदवस्था रूप उपशम किसको कहते हैं ?

[illegible]०—आगामी कालमें उदय आने योग्य निषेकोंके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]रूप उपशम है।

२. प्र०—उपशम भाव और उपशम करणमें क्या अन्तर है ?

[illegible] उपशम भाव तो मोहनीय कर्मका ही होता है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]सब प्रकृतियोंका होता है। तथा उपशम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है होता है किन्तु उपशम भाव ग्यारहवें गुणस्थान पर्यन्त [illegible] [illegible] है।

६०२ प्र०—निधत्तिकरण किसको कहते हैं ?

उ०—विवक्षित प्रकृतिके परमाणुओंका [illegible] [illegible] और [illegible] आनेके योग्य न होना निधत्तिकरण है।

६०४ प्र०—निकाचितकरण किसको कहते हैं ?

६२०. प्र०—पाप प्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—घातिया कर्मोंकी ४७ प्रकृतियाँ, नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरक आयु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि ४ जातियाँ, शेष पाँच संस्थान, शेष पाँच संहनन, अशुभ वर्ण ५, अशुभ रस ५, अशुभ गंध २, अशुभ स्पर्श ८, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति ये पाप प्रकृतियाँ हैं।

६२१. प्र०—पुद्गलविपाकी कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसका फल पुद्गलमें हो। जैसे शरीर नामकर्मके उदयसे पुद्गल ही शरीर रूप होकर परिणमन करता है।

६२२. प्र०—पुद्गलविपाकी प्रकृति कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छै संस्थान, तीन अंगोपांग, छै संहनन, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक, साधारण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, ये बासठ प्रकृतियाँ पुद्गल विपाकी हैं।

६२३. प्र०—भवविपाकी कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसका फल मनुष्यादि भव रूप हो।

६२४. प्र०—भवविपाकी प्रकृतियाँ कौन-सी हैं ?

उ०—चारों आयुकर्म भवविपाकी हैं।

६२५. प्र०—क्षेत्रविपाकी कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके फलसे परलोकको गमन करते समय विग्रह गतिमें जीवका आकार पूर्व शरीरका-सा बना रहे।

६२६. प्र०—क्षेत्रविपाकी प्रकृतियाँ कौन-सी हैं ?

उ०—चारों आनुपूर्वी नामकर्म क्षेत्र विपाकी हैं।

६२७. प्र०—जीवविपाकी कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जिसका फल जीवमें हो।

६२८. प्र०—जीवविपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—दो वेदनीय, दो गोत्र, घातिया कर्मोंकी ४७ प्रकृतियाँ तथा नामकर्मकी सत्ताईस (चार गति, पाँच जाति, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त

विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति और तीर्थंकर) ये अठहत्तर प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं।



१३

६२९. प्र०—ज्ञानावरण कर्मके कितने बन्ध हैं ?

उ०—ज्ञानावरण कर्मका एक ही बन्धस्थान है क्योंकि ज्ञानावरण कर्मकी पाँचों प्रकृतियाँ दसवें गुणस्थान तक प्रत्येक जीवके बंधती हैं और उसके बाद पाँचों ही नहीं बंधती।

६३०. प्र०—दर्शनावरण कर्मके कितने बन्धस्थान हैं ?

उ०—तीन—नौप्रकृतिक, छैप्रकृतिक और चारप्रकृतिक।

६३१. प्र०—दर्शनावरणके नौप्रकृतिक बन्धस्थानका स्वामी कौन है ?

उ०—मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके दर्शनावरण कर्मकी नौ प्रकृतियाँ बंधती हैं। आगेके गुणस्थानोंमें निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिका बन्ध नहीं होता।

६३२. प्र०—दर्शनावरणके छैप्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन है ?

उ०—सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम भाग तक उक्त तीन निद्राओंके सिवाय शेष छै प्रकृतियोंका बन्ध होता। आगे निद्रा और प्रचलाका बन्ध नहीं होता है।



१४

६३३. प्र०—व्युच्छित्ति किसे कहते हैं ?

उ०—जिस गुणस्थानमें जिन कर्मप्रकृतियोंका बन्ध उदय और सत्त्वकी व्युच्छित्ति कही है उस गुणस्थान तक ही उन प्रकृतियोंका बन्ध उदय सत्त्व पाया जाता है, आगे किसी भी गुणस्थानमें उन प्रकृतियोंका बन्ध उदय अथवा सत्त्व नहीं होता। इसीको व्युच्छित्ति कहते हैं।

६३४. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीर्थंकर, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। अतः आठों कर्मोंकी बन्ध योग्य एक सौ बीस प्रकृतियोंमें से तीन घटाने पर ११७ प्रकृतियाँ बन्ध योग्य हैं।

६३५. प्र०—तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध किसके होता है ?

उ०—चौथे असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सातवें अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त ही केवली या श्रुतकेवलीके चरणोंके निकट तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ करते हैं।

६३६. प्र०—मिथ्यात्वगुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसक वेद, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय जाति, नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु, इन सोलह प्रकृतियोंके बन्धका कारण मिथ्यात्व ही है। अतः मिथ्यात्व गुणस्थानसे आगे इनका बन्ध नहीं होता।

६३७. प्र०—सासादन गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—पहले गुणस्थानमें जो ११७ का बन्ध होता है उनमेंसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें जनकी व्युच्छित्ति होती है उन सोलह प्रकृतियोंको घटाने पर सासादन में १०१ प्रकृतियाँ बन्ध योग्य हैं।

६३८. प्र०—सासादन गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है ?

उ०—अनन्तानुबन्धी चार, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, न्यग्रोध परिमण्डल स्वाति कुब्जक वामन ये चार संस्थान, वज्रनाराच नाराच अर्धनाराच कीलक ये चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्च गति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु, उद्योत ये पच्चीस प्रकृतियाँ अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे बंधती हैं। अतः सासादन गुणस्थानसे आगे इनका बन्ध नहीं होता।

६३९. प्र०—तीसरे मिश्र गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—दूसरे गुणस्थानमें बन्ध योग्य प्रकृतियाँ १०१ हैं। उनमेंसे व्युच्छित्त हुई पच्चीस प्रकृतियोंको घटाने पर शेष ७६ बचती हैं। किन्तु इस गुणस्थानमें

किसी भी आयु कर्मका बन्ध नहीं होता। अतः पहले गुणस्थानमें नरकायु और दूसरे गुणस्थानमें तिर्यंचायुकी बन्धव्युच्छित्ति होनेसे शेष बची मनुष्यायु और देवायुको भी घटा देने पर तीसरे गुणस्थानमें बन्ध योग्य प्रकृतियाँ ७४ रहती हैं।

६४०. प्र०—मिश्र गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है ?

उ०—मिश्र गुणस्थानमें किसी भी प्रकृतिकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती।

६४१. प्र०—चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—तीसरे गुणस्थानमें ७४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध बढ़ जानेसे चौथे गुणस्थानमें बन्ध योग्य प्रकृतियाँ ७७ रहती हैं।

६४२. प्र०—चौथे गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—अप्रत्याख्यानावरण कषाय ४, वज्र ऋषभ नाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु ये दस प्रकृतियाँ अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयके निमित्तसे बंधती है। अतः चौथे गुणस्थानके अन्त समयमें इनकी बन्धकी व्युच्छित्ति हो जाती है।

६४३. प्र०—पाँचवें देशविरत गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—चौथे गुणस्थानमें जो ७७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है उनमेंसे चौथेमें व्युच्छिन्न हुई दस प्रकृतियोंको घटानेसे शेष रहीं ६७ प्रकृतियाँ [illegible] बंधती है।

६४४. प्र०—पाँचवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—चार प्रत्याख्यानावरण कषाय अपने उदयके निमित्तसे बंधती है। अतः पाँचवें गुणस्थानके अन्त समयमें इनकी व्युच्छित्ति हो जाती है।

६४५. प्र०—छठे प्रमत्तविरत गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—पाँचवें गुणस्थानमें ६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई चार प्रत्याख्यानावरण कषाय [illegible] घटानेपर शेष रहीं ६३ प्रकृतियोंका बन्ध छठे गुणस्थानमें होता है।

६४६. प्र०—छठे गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, [illegible]

प्रकृतियां प्रमादके निमित्तसे बंधती हैं। अतः छठे गुणस्थानके अन्त समयमें उनकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है।

६४७. प्र०—सातवें अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें बन्ध योग्य प्रकृतियाँ कितनी हैं?

उ०—छठे गुणस्थानमें ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है और ६ की बन्ध व्युच्छित्ति होती है अतः ६३ में से ६ घटानेसे शेष ५७ रह जाती हैं। किन्तु सातवेंमें आहारक शरीर आहारक अंगोपांगका बन्ध बढ़ जानेसे बन्ध योग्य प्रकृतियाँ ५९ हैं।

६४८. प्र०—सातवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है?

उ०—सातवें गुणस्थानके अन्तमें एक देवायुकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

६४९. प्र०—आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है?

उ०—सातवें गुणस्थानमें ५९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई देवायुको घटानेपर ५८ प्रकृतियोंका बन्ध आठवेंमें होता है।

६५०. प्र०—आठवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है?

उ०—आठवें गुणस्थानके प्रथम भागमें निद्रा और प्रचलाकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है। छठे भागमें तीर्थङ्कर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय, तैजस, कार्मण, आहारक, अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय इन तीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है। और अन्तिम भागमें हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी व्युच्छित्ति होती है।

६५१. प्र०—नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है?

उ०—आठवें गुणस्थानमें बंधनेवाली ५८ प्रकृतियोंमें व्युच्छिन्न हुई ३६ प्रकृतियोंको घटानेपर शेष रहीं बाईस प्रकृतियोंका बन्ध नौवें गुणस्थानमें होता है।

६५२. प्र०—नौवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है?

उ०—अनिवृत्तिकरणके पाँच भागोंमें क्रमसे पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया और संज्वलन लोभकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

६५३. प्र०—दसवें सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है?

उ०—नौवें गुणस्थानमें बन्धयोग्य बाईस प्रकृतियोंमेंसे व्युच्छिन्न हुई पाँच प्रकृतियोंको घटानेपर शेष रहीं १७ प्रकृतियोंका बन्ध दसवें गुणस्थानमें होता है।

६५४. प्र०—दसवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

उ०—दसवें गुणस्थानके अन्तमें पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र इन सोलह प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

६५५ प्र०—ग्यारहवें उपशान्त कषाय गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियाँ बंधती हैं ?

उ०—दसवें गुणस्थानमें जो १७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई सोलह प्रकृतियोंको घटानेपर शेष रही एक सातावेदनीयका बन्ध होता है।

६५६. प्र०—बारहवें और तेरहवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—एक सातावेदनीयका बन्ध होता है।

६५७. प्र०—ग्यारहवें बारहवें और तेरहवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—ग्यारहवें, बारहवेंमें एक भी प्रकृतिकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती। तेरहवें गुणस्थानमें बन्धमेंवाली एक सातावेदनीयकी व्युच्छित्ति होती है।

६५८ प्र०—चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—एक भी प्रकृतिका बन्ध नहीं होता।

६५९. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यङ् मिथ्यात्व, आहारकशरीर [illegible] और तीर्थङ्कर प्रकृति इन पाँच प्रकृतियोंका उदय इस [illegible] नहीं होता। अतः उदययोग्य १२२ प्रकृतियोंमेंसे पाँच घटानेपर ११७ का उदय होता है।

६६०. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें अन्तिम समयमें [illegible] त्रीन्द्रिय चौइन्द्रिय, जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त [illegible] प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति होती है। यह [illegible] है।

६६०. षट्खण्डागम, खण्ड १, पु० ८, पृ० ९।

[illegible] मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें पांच प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति होती है, [illegible] और [illegible] प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति सासादन गुणस्थानमें होती है।

६६१. प्र०—सासादन गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है?

उ०—पहले गुणस्थानमें जो ११७ प्रकृतियोंका उदय होता है, उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई पांच प्रकृतियोंको घटानेपर शेष ११२ रहती हैं। परन्तु सासादनमें नरक गत्यानुपूर्वीका उदय न होनेसे १११ प्रकृतियां उदययोग्य होती हैं।

६६२. प्र०—सासादन गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति कितनी प्रकृतियोंकी होती है?

उ०—सासादन गुणस्थानके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, एकेन्द्रिय आदि चार जाति और स्थावर इन नौ प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति होती है।

६६३. प्र०—मिश्र गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका उदय होता है।

उ०—दूसरे गुणस्थानमें १११ प्रकृतियोंका उदय होता है। उनमेंसे व्युच्छिन्न नौ प्रकृतियोंको घटानेपर शेष १०२ मेंसे नरकगत्यानुपूर्वीके सिवाय (क्योंकि वह दूसरे गुणस्थानमें घटाई जा चुकी है) शेष तीन आनुपूर्वी घटानेपर शेष रहीं ९९ प्रकृतियोंमें एक सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय यहां होनेसे तीसरे गुणस्थानमें उदययोग्य प्रकृतियां १०० हैं।

६६४. प्र०—मिश्र गुणस्थानमें आनुपूर्वीका उदय क्यों नहीं होता?

उ०—तीसरे गुणस्थानमें मरण न होनेसे किसी भी आनुपूर्वीका उदय नहीं होता।

६६५. प्र०—तीसरे गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है?

उ०—एक सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिकी उदय व्युच्छित्ति तीसरे गुणस्थानमें होती है?

६६६. प्र०—चौथे गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है?

उ०—तीसरे गुणस्थानमें १०० प्रकृतियोंका उदय होता है। उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति सम्यक् मिथ्यात्वको घटानेपर ९९ शेष रहती हैं। इनमें चारों आनुपूर्वी और सम्यक्त्व प्रकृतिको मिलाने से १०४ प्रकृतियोंका उदय चौथे गुणस्थानमें होता है।

६६७. प्र०—चौथे गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है?

उ०—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, नरकायु, देवायु, नरकगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, चारों आनुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, इन सतरह प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति चौथे अविरत सम्यग्दृष्टी गुणस्थानमें होती है।

६६८. प्र०—पांचवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—चौथे गुणस्थानमें जो १०४ प्रकृतियोंका उदय कहा है, उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई १७ प्रकृतियोंको घटानेपर शेष ८७ प्रकृतियोंका उदय होता है।

६६९. प्र०—पांचवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, उद्योत, नीच गोत्र इन आठ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति पांचवें देशविरत गुणस्थानमें होती है।

६७०. प्र०—छठे गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—पांचवें गुणस्थानमे ८७ प्रकृतियोंका उदय कहा है। उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति आठके घटानेपर शेष रही ७९ प्रकृतियोंमें आहारक शरीर और आहारक अंगोपांगको मिलानेसे ८१ प्रकृतियोंका उदय छठे गुणस्थानमें होता है।

६७१. प्र०—छठे गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग इन पांच प्रकृतियोंको उदय व्युच्छित्ति छठे प्रमत्त संयत गुणस्थानमें होती है।

६७२. प्र०—सातवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—छठे गुणस्थानमें जो ८१ प्रकृतियोंका उदय होता है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई पांच प्रकृतियोंको घटानेपर शेष ७६ प्रकृतियोंका उदय होता है।

६७३. प्र०—सातवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—अर्धनाराच, कीलक, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, सम्यक्त्व प्रकृति इन चार प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थानमें होती है।

६७४. प्र०—आठवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—सातवें गुणस्थानमें जो ७६ प्रकृतियोंका उदय कहा है, उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई चार प्रकृतियोंको घटानेपर शेष ७२ प्रकृतियोंका उदय होता है।

६७५. प्र०—आठवें गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—नरकायुके बिना १४७ का। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा १४० का सत्त्व होता है।

६९४. प्र०—पाँचवें गुणस्थानमें सत्त्व व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है?

उ०—एक तिर्यंचायु की।

६९५. प्र०—छठे गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है?

उ०—नरकायु और तिर्यंचायुके बिना १४६ का। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा १३९ का ही सत्त्व रहता है।

६९६. प्र०—सातवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है?

उ०—छठे गुणस्थानकी तरह १४६ का अथवा १३९ का।

६९७. प्र०—आठवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है?

उ०—आठवें गुणस्थानमें दो श्रेणी प्रारम्भ होती है—उपशम श्रेणि और क्षपक श्रेणि। द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणि ही चढ़ता है। अतः उनके, सातवें गुणस्थानमें जो १४६ का सत्त्व कहा है उनमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभको घटानेपर १४२ का सत्त्व होता है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि यदि उपशम श्रेणि चढ़ता है तो उसके सातवें गुणस्थानकी तरह १३९ का सत्त्व होता है। और क्षपक श्रेणिवालेके अनन्तानुबन्धी ४, दर्शन मोहनीय ३, और मनुष्यायुके सिवाय तीन आयुके बिना १३८ का ही सत्त्व होता है।

६९८. प्र०—नौवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व होता है?

उ०—आठवें गुणस्थानकी तरह इस गुणस्थानमें भी उपशम श्रेणिवाले द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके १४२, क्षायिक सम्यग्दृष्टिके १३९ और क्षपक श्रेणिवालेके १३८ प्रकृतियोंका सत्त्व होता है।

६९९. प्र०—नौवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है?

उ०—नौवें गुणस्थानके प्रथम भागमें नरकगति, तिर्यञ्चगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय जाति, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, उद्योत, आतप, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर इन सोलह प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। दूसरे भागमें अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, इन आठ प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। तीसरे भागमें नपुंसक वेद, चौथे भागमें स्त्रीवेद, पाँचवें भागमें छै नोकषाय, छठे भागमें पुरुषवेद, सातवेंमें संज्वलन क्रोध, आठवेंमें संज्वलन मान और नौवें भागमें संज्वलन माया इस प्रकार नौवें गुणस्थानमें छत्तीस

प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। यह सत्त्व व्युच्छित्ति क्षपक श्रेणिवालोंके ही होती है।

७००. प्र०—दसवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—दसवेंमें नौवें गुणस्थानकी तरह उपशम श्रेणीवाले द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टीके १४२ और क्षायिक सम्यग्दृष्टिके १३९ का सत्त्व रहता है। तथा क्षपक श्रेणिवालेके नौवें गुणस्थानमें जो १३८ प्रकृतियोंका सत्त्व है उनमेंसे व्युच्छिन्न हुई ३६ प्रकृतियोंको घटाने पर शेष रही १०२ प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है।

७०१. प्र०—दसवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—एक संज्वलन लोभकी व्युच्छित्ति होती है।

७०२. प्र०—ग्यारहवें गुणस्थानमें सत्त्व कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—दसवें गुणस्थानकी तरह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके १४२ और क्षायिक सम्यग्दृष्टीके १३९ का सत्त्व रहता है। इस गुणस्थानमें क्षपक श्रेणि नहीं है।

७०३. प्र०—बारहवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—दसवें गुणस्थानमें क्षपक श्रेणि वालेके जो १०२ प्रकृतियोंका सत्त्व होता है उनमेंसे व्युच्छिन्न प्रकृति संज्वलन लोभको घटाने पर शेष १०१ प्रकृतियोंका सत्त्व होता है।

७०४ प्र०—बारहवें गुणस्थानमें सत्त्व व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—बारहवें गुणस्थानमें सत्त्व व्युच्छित्ति पाँच ज्ञानावरण चार दर्शनावरण, निद्रा प्रचला और पाँच अन्तराय इन सोलह प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

७०५ प्र०—तेरहवें गुणस्थानमें सत्त्व कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—बारहवें गुणस्थानमें जो १०१ का सत्त्व कहा है उनमेंसे व्युच्छिन्न १६ प्रकृतियोंको घटाने पर शेष रही ८५ प्रकृतियोंका सत्त्व तेरहवें गुणस्थानमें होता है।

७०६. प्र०—चौदहवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—चौदहवें गुणस्थानमें तेरहवें गुणस्थानकी तरह ८५ प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है परन्तु उपान्त्य समयमें ७२ और अन्तिम समयमें १३ प्रकृतियोंका सत्त्वसे व्युच्छिन्न (नाश) हो जानेसे जीवका मोक्ष हो जाता है।

७०७. प्र०—चौदहवें गुणस्थानमें किन प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थानके उपान्त्य समयमें पांच शरीर, पांच बन्धन, पाँच संघात, छै संस्थान, तीन अंगोपांग, छै संहनन, पांच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, एक वेदनीय, नीच गोत्र इन वहत्तर प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। और अन्त समयमें एक वेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्ति, आदेय, यशकीर्ति, तीर्थंकर, मनुष्यायु और उच्च गोत्र, मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन तेरह प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

७०८. प्र०—किन प्रकृतियोंकी वन्धव्युच्छित्ति उदयव्युच्छित्तिके पीछे होती है ?

उ०—देवायु, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, अयशःकीर्ति इन आठ प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्ति पहले होती है, पीछे वन्धव्युच्छित्ति होती है।

७०९. प्र०—किन प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति और वन्धव्युच्छित्ति एक साथ होती है ?

उ०—मिथ्यात्व, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, पुरुषवेद, संज्वलन लोभ के विना १५ कषाय, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, साधारण, अपर्याप्त इन इकतीस प्रकृतियोंका वन्ध और उदय दोनों एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं।

७१०. प्र०—किन प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति वन्धव्युच्छित्तिके पीछे होती है ?

उ०—पूर्वोक्त ८+३१=३९ प्रकृतियोंसे शेष जो इक्यासी प्रकृतियाँ रहती हैं उनका वन्ध व्युच्छेद पहले और उदय व्युच्छेद पीछे होता है।

७११. प्र०—परोदयसे बंधनेवाली प्रकृतियाँ कौन-सी हैं ?

उ०—तीर्थंकर, नरकायु, देवायु, नरक गति, देवगति, नरक गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग ये ग्यारह प्रकृतियां परोदयसे बंधती हैं, अर्थात् तीर्थंकर प्रकृतिके उदयवालेके तीर्थंकरका वन्ध नहीं होता। इसी तरह नारकीके नरकायुका और देवके देवायु-का वन्ध नहीं होता।

७१२ प्र०—स्वोदयसे बन्धनेवाली प्रकृतियां कौन हैं ?

उ०—पांच ज्ञानावरण, पांच अन्तराय, चार दर्शनावरण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, तैजस और कार्मण शरीर, निर्माण, अगुरुलघु, वर्ण आदि चार, और मिथ्यात्व ये सत्ताईस प्रकृतियां स्वोदयसे बंधती हैं। अर्थात् जिनके मिथ्यात्वका उदय होता है उन्हीके मिथ्यात्वका बन्ध होता है इसी तरह शेष २६ प्रकृतियोंके विषयमें भी जानना।

७१३. प्र०—स्वोदय और परोदयसे बंधनेवाली प्रकृतियां कौन-सी हैं ?

उ०—परोदय बन्धी ११ और स्वोदय बन्धी २७ प्रकृतियोंके बिना शेष ८२ प्रकृतियां स्वोदयसे भी बंधती है और परोदयसे भी बंधती है।

७१४. प्र०—निरन्तर बंधनेवाली प्रकृतियां कौन सी हैं ?

उ०—सैंतालीस ध्रुवप्रकृतियां तीर्थंकर आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, और चार आयु ये चौवन प्रकृतियां निरन्तर बंधती है।

७१५. प्र०—ध्रुवबन्धी प्रकृतियां कौन सी हैं ?

उ०—पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, पांच अन्तराय, मिथ्यात्व सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस और कार्मण शरीर वर्ण आदि ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण ये सैंतालीस प्रकृतियां ध्रुवबन्धी हैं।

७१६. प्र०—निरन्तरबन्ध और ध्रुवबन्धमें क्या भेद है ?

उ०—अपनी बन्धव्युच्छित्ति तक [illegible] प्रति समय अवश्य बन्ध होता है उन्हें ध्रुवबन्धी कहते हैं। [illegible] बन्धव्युच्छित्तिसे पहले प्रति समय सदा निरन्तर [illegible] है। [illegible] और आहारकका बन्ध प्रारम्भ होनेके बाद [illegible] जाता है इससे उनका प्रति समय निरन्तर [illegible] है। [illegible] जिस कालमें होना योग्य है उस कालमें [illegible] बन्ध होता रहता है। इसलिये इनको निरन्तरबन्धी कहते हैं।

७१७. प्र० सान्तरबन्धी प्रकृतियां कौन सी हैं ?

उ०—स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार जाति, [illegible] गत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अरति, शोक, [illegible] अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, [illegible], दुःस्वर, अनादेय, अयश कीर्ति ये चौंतीस प्रकृतियां [illegible] हैं।

७१८ प्र०—सान्तरबन्धी प्रकृति किसे कहते हैं ?

विपयानुक्रमणी